उद्धव-शतक
'रत्नाकर'

~~NANSI SARAF~~
~~M.A. FINAL~~
~~P.G. Deptt of Hindi~~
~~J & K University~~
~~KASHMIR Division~~

3541
2333

Teja Gurkkar

MISS URMILA NAKAB
M.A. FINAL KASHMIR UNIVERSITY

उद्धव-शतक

'रत्नाकर'

रसिक मण्डल

॥ प्रयाग ॥

की ओर से

प्रकाशक——इंडियन प्रेस (पब्लिकेशंस) प्राइवेट लिमिटेड, प्रयाग

१९६८

मूल्य ४·००

उद्धव शतक

१९६८

मुद्रक—पी० एल० यादव इंडियन प्रेस प्राइवेट लिमिटेड, प्रयाग

उद्धव शतक

विषय-सूची

विषय	पृष्ठ
१—प्राक्कथन ..	११-९३
२—मंगलाचरण ..	१
३—श्री उद्धव को मथुरा से ब्रज भेजते समय के कवित्त ..	१
४—श्री उद्धव के मथुरा से ब्रज जाते समय के मार्ग के कवित्त ..	२१
५—श्री उद्धव के ब्रज में पहुँचने के समय के कवित्त ..	२७
६—श्री उद्धव-वचन ब्रजवासियों से ..	३५
७—गोपी-वचन उद्धव-प्रति ..	४१
८—उद्धव के ब्रज से बिदा होते समय के कवित्त ..	१०७
९—उद्धव के ब्रज से लौटते समय के कवित्त ..	११५
१०—उद्धव के मथुरा लौट आने के समय के कवित्त ..	११९
११—ब्रज से लौटने पर उद्धव-वचन श्री भगवान्-प्रति ..	१२७

उद्धव
शतक

दो शब्द

ईश्वरानुकम्पा से आज हम इस पुस्तक के रूप में अपने गुणग्राही, सहृदय तथा प्रेमी पाठकों के सम्मुख यह प्रणति प्रस्तुत करते हैं । साहित्य-मर्मज्ञ ब्रजभाषाचार्य्य महाकवि श्री बाबू जगन्नाथदासजी 'रत्नाकर' के परम प्रतिभावान् रुचिर-रत्नों का यह अनुपम हार हमें उदारतापूर्ण उपहार के रूप में प्राप्त हुआ है।

हमारा 'रसिक-मण्डल'—जिसने अपनी चार वर्ष की ही सेवा से हिन्दी के प्रायः सभी सहृदय विद्वानों, आलोचकों और कविवरों आदि की स्नेहमयी सहानुभूति प्राप्त कर ली है—श्री 'रत्नाकर' जी की उदार कृपा का, कहना

व्यर्थ एवं उपचार-मात्र है, इस रत्नदान के लिए हृदय से ऋणी और कृतज्ञ है, और सदैव रहेगा।

हिंदी-काव्य-साहित्य और विशेषतया ब्रजभाषा काव्य-साहित्य के संरक्षण, प्रवर्धन एवं उसका जनता में प्रचार करने के उद्देश्य को सामने रखकर रसिक-मण्डल ने जिस प्रकार प्रत्येक पूर्णिमा तथा अन्य विशेष तिथियों पर कवि-सम्मेलनों और विद्वानों के व्याख्यानादि का विधान किया है, उसी प्रकार प्रकाशन-कार्य्य भी उसने प्रारम्भ किया है।

प्रथम श्री 'रत्नाकर' जी ने श्री 'रसालजी' से इसकी भूमिका शीघ्र लिख कर श्री राय कृष्णदासजी के पास बनारस भेज देने के लिए कहा, क्योंकि इसे वे ही प्रकाशित करना चाहते थे। पर हम लोगों ने इसे मण्डल की ओर से प्रकाशित करना सोचा। 'रत्नाकर' जी से प्रार्थना की, उन्होंने श्री राय

कृष्णदासजी से अनुमति लेकर कृपापूर्वक इसे मण्डल को दे दिया। अस्तु; रसिक-मण्डल सदैव श्री राय कृष्णदासजी का भी अनुगृहीत है।

रसिक-मण्डल सदैव आभारी रहेगा श्रीयुत हरिकेशवजी घोष, अध्यक्ष इंडियन प्रेस, प्रयाग का जिनकी कृपा से यह ग्रन्थ ऐसी अनुपम सुन्दरता के साथ वस्तुतः रत्नरूप में ही प्रकाशित हुआ है।

हमें पूर्ण आशा है कि हिन्दी का सहृदय संसार इस रत्न को हृदय से अपनायेगा। तथास्तु।

निवेदक
साहित्य-मन्त्री

उद्धव
शतक

'रत्नाकर'

निवेदन

कविता में मेरी रुचि कुछ लड़कपन ही से है। ४० या ४५ वर्ष हुए जब मैंने दो-एक कवित्त उद्धव-सम्बन्धी बनाये थे। वे कई मित्रों तथा उस समय के कवियों को रुचिकर प्रतीत हुए। पूज्यपाद स्वर्गीय पिताजी ने भी उन पर प्रसन्नता प्रकट की। इस प्रकार प्रोत्साहित होकर मैंने उद्धव-विषयक ५-७ कवित्त और बनाये और फिर विचार किया कि एक उद्धव-शतक की रचना की जाय। इसी विचार से समय-समय पर दो-एक कवित्त उक्त विषय के बनते रहे। संवत् १९७७ के अन्त तक शनैः शनैः उन्नव-विषयक ८०-८५ कवित्त बन गये थे। १९७८ के आरम्भ में मेरा एक संदूक

हरद्वार में चोरी चला गया, जिसमें अन्यान्य सामग्री के साथ मेरे कवित्तों की एक चौपतिया भी जाती रही। उसमें ५०० के ऊपर कवित्त थे। उन्हीं में उद्धव-शतक के कवित भी सम्मिलित थे। उनमें से दो-ढाई सौ कवित्त तो ज्यों-त्यों स्मरण कर-करके दूसरी चौपतिया पर लिख लिये गये, इनमें ४०-५० कवित्त उद्धव-सम्बन्धी भी स्मरण आये, शेष जाते ही रहे। अतः और कवित्तों के साथ-साथ उद्धव के कवित्त भी फिर से मैं शनैः शनैः बनाने लगा। संवत् १९८६ के आरम्भ तक सब मिल-जुलकर सौ से कुछ अधिक कवित्त उद्धव के उपस्थित हो गये। उस समय हमारे कई मित्रों ने विशेषतः प्रयागस्थ रसिकमंडल के सभापति श्री डा० रामप्रसादजी त्रिपाठी तथा उक्त मंडल के उपसभापति श्री पं० रामशंकरजी शुक्ल 'रसाल' ने आग्रह किया कि अब उद्धव-शतक को प्रकाशित करा ही देना चाहिए। अतः इन

उद्धव शतक

महाशयों के अनुरोध से इसको सुप्रसिद्ध इंडियन प्रेस द्वारा प्रकाशित करा के पाठकों को भेंट करता हूँ। हाँ, एक यह बात भी कह देना आवश्यक है कि इस पुस्तक में कवित्त उसी क्रम से नहीं रक्खे गये हैं जिस क्रम से वे बने हैं, प्रत्युत वे विषयानुकूल ही एकत्रित किये गये हैं।

शिवाला घाट
काशी

निवेदक
जगन्नाथदास 'रत्नाकर'

उद्धव
शतक

प्राक्कथन

काव्य-शास्त्र के आचार्य्यों ने काव्य की कई परिभाषाएँ दी हैं, जिनमें मत-भेद सा आभासित होता है। कोई आचार्य्य काव्य की आत्मा को रस के रूप में मानकर काव्य की परिभाषा देते हुए—"वाक्यं रसात्मकं काव्यम्" कहता है और कोई काव्य की आत्मा को ध्वनि के रूप में मानता है। इसी प्रकार कोई काव्य में अलंकारों का प्राधान्य दिखलाता है और कोई उस वक्रोक्ति (विच्छित्ति या वैचित्र्य) का जिसमें वलक्षण्य की विशेषता होती है और जो काव्य की आत्मा है।

पाश्चात्य कवि एवं विद्वान् भी काव्य की कई परिभाषाएँ देते हैं। उनमें भी इस सम्बन्ध में मतभेद है। अस्तु, कह सकते हैं कि अद्यावधि काव्य की निश्चित रूप से एक सर्वमान्य परिभाषा नहीं प्राप्त हो सकी, और हमारी समझ में प्राप्त भी नहीं हो सकती, क्योंकि—"भिन्नरुचिर्हि लोक:" उसके मार्ग में एक बहुत बड़ा प्रतिबन्धक है। हम जिसको काव्य मानते हैं, उसमें निम्नांकित लक्षणों का होना आवश्यक या अनिवार्य्य है।

काव्य में—

(१) सुन्दर और मनोरंजक भाव हों।

(२) चमत्कृत शैली से, भावों का वैचित्र्य के साथ सुव्यवस्थित एवं काव्योचित भाषा में अभिव्यंजन हो।

(३) सरसता और कोमलता लिये हुए सुन्दर पदावली हो।

(४) मधुर और मंजुल ऐसा शब्द-संचयन हो, जिसमें सब प्रकार से स्पष्ट सुबोधिता, सार्थकता और स्वाभाविकता हो।

(५) मनोरंजक कल्पना और चित्ताकर्षक चित्रोपमता हो।

(६) स्वाभाविकता के साथ ही साथ मानसिक भावनाओं और मनोवृत्तियों का व्यापक और वास्तविक चारु-चित्रण भी हो।

(७) मानव-जीवन अथवा उसके व्यापारों की विशद व्यञ्जना के साथ ही साथ गूढ़, गम्भीर और उच्च विचारों का भी सामञ्जस्य हो।

(८) वर्णन में यौक्तिक क्रम और सजीव साकारता हो।

(९) मधुर संगीतात्मक छन्द की छटा हो।

जहाँ ये सब लक्षण या गुण अपने सुन्दर रूपों में प्राप्त होते हैं, समझना चाहिए कि वहीं सत्काव्य है। इन लक्षणों को रखते हुए काव्य की जो

परिभाषा बनती है, कदाचित् उसमें कोई भी मत-भेद नहीं हो सकता। हम इसी परिभाषा को मानकर अपने प्रस्तुत काव्य का आलोचन करेंगे और देखेंगे कि इसमें इन सब लक्षणों की सत्ता है या नहीं और यदि है तो कितनी और किस रूप में है।

काव्य की आलोचना—आलोचना शब्द का अर्थ है सब प्रकार देखना। काव्य के आलोचन में काव्य को अच्छी तरह देखना चाहिए। पहले जो लक्षण काव्य के दे दिये गये हैं, उन्हें किसी प्रस्तुत काव्य में खोजकर निकालना चाहिए। यदि वे सब लक्षण उसमें उपस्थित हैं तब उसे काव्य मानकर फिर ध्यान से उसकी सब बातों पर विचार करना चाहिए। निष्कर्ष रूप में हम कह सकते हैं कि किसी काव्य में यह देखना कि उसकी भाषा उसकी शैली, उसकी आन्तरिक विचारावलि अथवा भावमाला, शब्दों के

द्वारा उसकी भावनाओं की अभिव्यञ्जना किस रूप में है, आलोचना करना है। यदि काव्य में सभी गुण उत्कर्ष-रूप में मिलते हैं तो काव्य उच्च कोटि का है और यदि नहीं, तो जिस रूप में उसमें काव्य के गुण विद्यमान हैं, उसी कोटि में उस काव्य की गणना होनी चाहिए।

आज-कल आलोचना की शैली कुछ विचित्र ढंग से चलने लगी है और उसके दो भिन्न मार्ग से हो गये हैं। कुछ लोग तो केवल सद्गुणों पर ही विचार करके प्रशंसात्मक आलोचना करते हैं और कुछ लोग केवल दोष पर ही दृष्टिपात करके निन्दात्मक कटु प्रलाप को ही आलोचना मानकर चलते हैं। किन्तु यदि विचारपूर्वक देखा जाय तो सच्ची समालोचना इन दोनों से परे है। उसमें एक प्रकार से ये दोनों ही बातें सन्निहित हैं अर्थात्

उद्धव शतक

उसमें आलोचित काव्य के सद्‌गुणों का भी प्रदर्शन रहता है और उसके दोष पर भी निष्पक्ष भाव से यथोचित प्रकाश डाला जाता है।

सत्काव्य तो वही है जिसमें दोषों का अभाव और सद्‌गुणों का प्रत्यक्ष ही पूरा प्रभाव हो। तो भी इस विचार के अनुसार कि भूल करना मानव-स्वभाव है (**To err is human**) काव्य के कतिपय दोषों को हम छोड़ सकते हैं और उसके गुणों पर ही पूर्ण प्रकाश डाल सकते हैं। कहा भी है "गुणाः ग्राह्याः दोषाः क्षम्या" अर्थात् गुण ग्राह्य हैं और दोष क्षम्य हैं।

"संत-हंस गुनपय गहहिं, परिहरि वारि-विकार"

हम इसी आधार पर प्रस्तुत काव्य की मार्मिक और सूक्ष्म आलोचना अपने सुयोग्य और सहृदय पाठकों के सम्मुख उपस्थित करने का प्रयत्न करेंगे और अपना मत देकर पाठकों पर ही उसके सदसद होने का निर्णय छोड़ेंगे।

आलोचना की आवश्यकता—हमारे यहाँ प्राचीन काल से यही रीति प्रचलित रही है कि किसी जीवित कवि के काव्य की आलोचना न की जाय, क्योंकि उसका रचना-काल जब तक समाप्त न हो जाय तब तक उसकी प्रतिभा की सीमा का अन्तिम प्रौढ़ रूप अथवा पूर्ण कौशल निश्चित रूप से निर्धारित नहीं किया जा सकता। उसकी प्रतिभा, उसके जीवन-काल में सदैव प्रगतिशील बनी रहती है। इसलिए उसकी किसी एक ही कृति को लेकर उसी से सब निश्चित बातों का निकालना और उसके उत्कर्ष का निर्धारित करना सर्वांगशुद्ध न होगा। किन्तु अब वर्तमान समय में पाश्चात्य बातों के प्रभाव से यह परिपाटी लुप्तप्राय हो गई है, और अब जीवित कवियों की कृतियों पर भी हमारे सुयोग्य समालोचक महोदय प्रकाश डालने लगे हैं। लोगों का विचार है कि ऐसा करने से कवि और उसके काव्य दोनों का हित होता है।

यदि उसकी रचना सत्काव्य है और आलोचना की कसौटी पर कसे जाने से श्लाघनीय होती है, तो कवि अपने सुधामय कीर्ति-फल का आस्वादन कर अपना अभीष्ट आनन्द अपने इसी जीवन में प्राप्त कर लेता है और अपने श्रम को सफल पाकर सिद्धमनोरथ भी हो जाता है। यदि उसका काव्य कुछ दोषमय है और सुयोग्य आलोचकों के द्वारा निष्पक्ष भाव से उसके काव्यगत दोष सूचित किये गये हैं, तो वह अपना सुधार कर सकता है और आगे अपने काव्य को निर्दोष बनाने का प्रयत्न कर सकता है। लोगों का यह विचार बहुत अंश तक ठीक भी है। प्रस्तुत काव्य के रचयिता हिन्दी-संसार में सुविख्यात स्वनामधन्य श्री बाबू जगन्नाथदासजी 'रत्नाकर' बी० ए० हैं, जिनके विषय में हम ही क्या, लोक-स्वर भी यही कहता है कि हिन्दी-संसार के वे इस वर्तमान समय के अग्रगण्य महाकवि और ब्रजभाषा के प्रधान आचार्य्य हैं।

उद्धव-शतक किस प्रकार का काव्य है ?

आचार्य्यों ने काव्य को कई सिद्धान्तों के आधार पर कई प्रकार से विभक्त किया है। **अर्थ के आधार पर** काव्य के **ध्वन्यात्मक** आदि भेद किये गये हैं। **ऐन्द्रिक प्रत्यक्षता** के आधार पर दृश्य और श्रव्य दो श्रेणियों में काव्य ग्रन्थों का विभाग हुआ है और **काव्य-वस्तु अथवा विषय के आधार पर** काव्य के मुख्य भेद यों किये गये हैं। **१—वर्णनात्मक काव्य** जिसमें किसी प्राकृतिक अथवा मानव-रचित दृश्य आदि का वर्णन किया जाता है। २—**प्रबन्धात्मक** अथवा **कथात्मक**—जिसमें एक आदर्श रखकर किसी कथा के आधार पर एक कथा लिखी जाती है और जिसमें जीवन की घटनाओं का भी अच्छा उल्लेख किया जाता है। ३—**मुक्तक**

जिसमें प्रायः ऐसे संगीतात्मक छन्द रहते हैं जो स्वतन्त्र रूप से अपने पूर्ण भावों को बिना किसी प्रकार की बाहरी सहायता से व्यक्त करते हैं।

अत्र यदि हम प्रस्तुत काव्य को देखते हैं तो ज्ञात होता है कि इसमें **प्रबन्ध काव्य और मुक्तक दोनों का सुन्दर सामञ्जस्य** है, अर्थात् इसमें एक घटना-विशेष की कथा भी है और साथ ही इसका प्रत्येक छन्द स्वतन्त्र-सा भी है। नाटक के समान यद्यपि हम इसे दृश्य काव्य नहीं कह सकते, तो भी हम इसे **चित्रोपम** (मूर्त) काव्य अवश्य कह सकते हैं; क्योंकि इसके पढ़ने पर ऐसा ज्ञात होता है मानो कवि किसी चित्रपट पर चित्र चित्रित कर रहा है, जिसके अनुरूप पढ़ते समय हमारे मस्तिष्क पर भी चित्र खिंचते जाते हैं।

अर्थ-शक्तियों पर विचार करते हुए यदि हम इसे देखें तो यह स्पष्ट हो जाता है कि यह अभिधा, लक्षणा और व्यञ्जना तीनों से परिपुष्ट है। इस

प्रकार विचार करके हम कह सकते हैं कि उद्धव-शतक वह चित्रोपम सत्काव्य है जिसमें प्रबन्धात्मक मुक्तक का प्राधान्य है और जिसमें अभिधा, लक्षणा और व्यञ्जना तीनों का अच्छा उत्कर्ष मिलता है। सरसता, रसात्मकता, अर्थ गौरव और ललित तथा मृदुल पदावली की मधुरता तो कूट-कूटकर भरी ही हुई हैं।

अपने शैली का यह एक अनूठा काव्य हैं। जिस प्रकार हिन्दी-साहित्य में दोहा छन्द में शतक या सतसई लिखने की पद्धति हिन्दी-काव्य के माध्यमिक काल में प्रचलित थी, उसी प्रकार यह काव्य भी केवल घनाक्षरी शब्दों में सतसई के समान लिखा गया है अर्थात् इसमें केवल १२६ घनाक्षरियाँ हैं। सतसई में भी पूरे सौ दोहे नहीं हुआ करते, वरन् उनकी संख्या कुछ अधिक रहती हैं।

चूँकि सतसई दोहा पद्धति के लिए ही रूढ़ि-सी हो गई है, इसलिए इसका नाम सतसई पर न रक्खा जाकर संस्कृत की शतक शैली के आधार पर 'उद्धव-शतक' रक्खा गया है। इस 'उद्धव' शब्द के द्वारा इस काव्य की वस्तु का परिचय भी प्राप्त हो जाता है।

कथावस्तु इस काव्य में गोपियों और कृष्ण से सम्बन्ध रखनेवाली उस घटना का चित्रण किया गया है जिससे हिन्दी-जनता भक्त कविवरों की कृपा से भली भाँति परिचित है। इसकी कथा-वस्तु का निष्कर्ष यह है— भगवान् श्रीकृष्ण अपने मित्र ज्ञानी उद्धव को अपना पत्र-वाहक बनाकर इसी व्याज से गोपियाँ के निकट भेजते हैं। 'उद्धव' जी गोकुल में पहुँचकर गोपियों से मिलते हैं और उनसे ज्ञान एवं योग-सम्मत वार्तालाप करते और उन्हें उपदेश देते हैं। गोपियाँ उत्तर में विशुद्ध-प्रगाढ़-प्रेम-पूर्ण हार्दिक

भावों को व्यक्त करती हुई उद्धव की योग-ज्ञान सम्मत बातों को काट देती हैं और 'उद्धव' को इस प्रकार प्रभावित करती हैं कि वे भी उन्हीं के समान कृष्ण-भक्ति के रंग में रँग जाते हैं। वे वहाँ से आकर कृष्ण के समीप भक्त के ही रूप में गोपियों की दशा एवं उनके सन्देश का कथन करते हैं और उन्हें गोपियों पर कृपा करने की अनुमति देते हैं।

इस प्रकार इसमें केवल एक छोटी सी ही घटना का वर्णन किया गया है और इसी कथावस्तु का ऐसा उत्कर्ष दिखलाया गया है कि उससे ज्ञान और योग की अपेक्षा भक्ति और प्रेम की महत्ता अधिक जँचने लगती है। इसी प्रकार यद्यपि नन्ददास आदि दूसरे भक्त कवियों ने भी लिखा है तथापि इसमें किसी प्रकार भी उनका भावापहरण नहीं हो सका वरन् सर्वत्रैव मंजुल मौलिकता का ही प्राधान्य तथा प्राबल्य प्राप्त होता है। जैसा हमने पहले

लिखा है, यह प्रबन्ध-काव्य होता हुआ भी मुक्तक काव्य की शैली में लिखा गया है और इसका प्रत्येक कवित्त अपनी स्वतन्त्र सत्ता और महत्ता रखता है।

एक विशेष बात, जो इसमें और देखने को मिलती है यह है कि इसमें वार्तालाप या कथोपकथन का भी समावेश किया गया है और वह भी छन्दों ही से। अस्तु, कह सकते हैं कि यह छन्दबद्ध कथोपकथन के भी रूप में होकर वार्तात्मिक काव्य भी है। सुन्दरता इसमें यह है कि पारस्परिक वार्तालाप का निर्वाह कवित्त जैसे बड़े छन्द में भी सफलता के साथ किया गया है और उसमें सब प्रकार स्वाभाविकता, सरलता और स्पष्टता रक्खी गई है।

कथोपकथन में सर्वत्र यौक्तिक क्रम और सुव्यवस्थित शैली का निर्वाह किया गया है। साथ ही भावनाओं और उनके अनुभवों (उनके प्रभाव से उत्पन्न

होनेवाली आंगिक क्रियाओं) का भी नितांत साकार और स्वाभाविक चित्रण किया गया है जिससे इसमें पूरी सजीवता और चारु चित्रोपमता आ गई है।

उद्धव-शतक में दार्शनिक विचार

श्री मद्भागवत ही वह प्रधान ग्रन्थ है जिस पर समस्त कृष्ण-भक्ति का विचित्र एवं पवित्र प्रासाद समाधारित है। जितने भी कृष्ण भक्त कवि हुए हैं, सभी ने अपनी रचनाओं को इसी महाग्रन्थ पर आधारित रक्खा है, क्योंकि कृष्ण-लीला का यही एक-मात्र प्रशस्त ग्रन्थ है। 'उद्धव' और गोपियों के प्रसंग में ज्ञान योग तथा प्रेम और भक्ति की जो विवादपूर्ण चर्चा

है, उसका भी आधार भागवत है। भागवत में गोपियों के द्वारा प्रेम और भक्ति की ज्ञान और योग के सम्मुख विशेष महत्ता दिखलाई गई है। अस्तु, जितने भी कृष्ण-भक्त कवि हुए हैं सभी ने ऐसा ही किया है। कविवर नन्ददास ने अपने 'भ्रमरगीत' में यह विवाद बहुत सुन्दरता के साथ दिखलाया है। दूसरे सुकवियों ने भी उनका ही-सा अनुकरण किया है।

प्रस्तुत पुस्तक में भी महाकवि 'रत्नाकर' ने ऐसा ही किया है, किन्तु ऐसी सुन्दरता और मौलिकता के साथ यह विवाद चलाया है कि हमारी समझ में कदाचित् और किसी ने भी ऐसा नहीं कर पाया।

इसी प्रसंग में कवि ने दार्शनिक विचारों का भी सुन्दर समावेश किया है। यद्यपि विचार सभी प्राचीन और चिरप्रसिद्ध हैं, फिर भी उनके संगुम्फन

का ढंग सर्वथा मौलिक और स्तुत्य है। कहीं-कहीं पर तो विचारों में भी नवीनता का अनूठा आभास मिलता है।

प्रथम कृष्ण को 'उद्धव' ज्ञान का उपदेश करते हैं और यह दिखलाते हैं कि यहाँ—'सर्वं खल्विदं ब्रह्म' अथच 'एकोऽहम् द्वितीयो नास्ति' तथा 'ब्रह्म सत्यम् जगन्मिथ्या' का सिद्धान्त रक्खो और विचार करो तो तत्त्वज्ञान के साथ ही साथ ब्रह्मज्ञान ही प्रधान है (कवित्त नं० १५)। साथ ही 'उद्धव' दिखलाते हैं कि यह संसार स्वप्नवत् है और इसका सब कारबार भी स्वप्नवत् ही है (कवित्त नं० १६)। कृष्ण इसके उत्तर में और तो कुछ विशेष नहीं कहते, हाँ, इतना अवश्य कहते हैं कि हे उद्धव! तुम जाकर एक बार गोकुल हो आओ, फिर लौटकर हमें यही ज्ञान सिखलाओ तो हम मान लें। 'उद्धव' गोकुल जाते हैं किन्तु मार्ग ही में उनके ज्ञानी और विरागी मानस में एक

दूसरी ही लहर लहराने लगती है। वहाँ उस पर प्रेम और भक्ति की छाई हुई वारिदावली से दूसरी ही सुधा-वृष्टि होने लगती है और उसके प्रभाव से 'उद्धव' के हृत्क्षेत्र में प्रेम और भक्ति के नवीन भावांकुर अंकुरित होने लगते हैं। उनकी ज्ञानगठरी की गाँठ खुल जाती है और उनकी सभी विचार-पूँजी फैलकर कछार के करीलों और तमालों में उलझ जाती है (कवित्त नं० २२)।

गोकुल की गली में पहुँचकर 'उद्धव' की आँखों से प्रेम-वारि बह चलता है, जिससे ज्ञान का मद बह जाता है और उनके ध्यान से योग के विधान भी दूर हो जाते हैं। शरीर पुलकित हो जाता है और ज्ञानार्कालोक से नीरस हुए मानस में सरसता आ चलती है (कवित्त नं० २३)।

'उद्धव' का आगमन सुनकर गोपियाँ आती हैं और प्रेमातुर होकर उनसे

कृष्ण का संदेश पूछती हैं। इस समय प्रेम से गोपियों की जो दशा हो जाती है उसे देखकर ज्ञानी और विरागी 'उद्धव' भी ऐसे हो जाते हैं जैसा कवित्त नं० २८ में 'रत्नाकर' जी ने बड़ी मार्मिकता, स्वाभाविकता, मौलिकता और चित्रोपमता से दिखलाया है। 'उद्धव' फिर भी अपने ज्ञान का दिव्यालोक फैलाते हैं। बस, यहीं से दार्शनिक भावों का समावेश हो चलता है। योग के द्वारा अन्तर्दृष्टि करने और हृत्कमल पर जगनेवाली ब्रह्मज्योति में ध्यान लगाने से भगवान् कृष्ण का संयोग प्राप्त होता है। जड़ और चेतन के विलास का विकास उत्पन्न होता है और अपूर्व आनन्द मिलता है। मोह के कारण जिन कृष्ण को गोपियों ने अपने से विलग समझा है, वे निरन्तर ही सबके अन्तर में रहते हैं (कवित्त नं० ३०)। वह सब तो माया का ही प्रपंच है जिसके कारण सच्चिदानन्द का वह सत्य सत्त्व, जो पंचतत्त्वनिर्मित इस

संसार में एक सा है, अपने वास्तविक रूप में नहीं प्रकट होता। सर्वत्र अनेक वस्तुओं के रूपों में वस्तुतः उसी एक ब्रह्म का रूप है, जो भ्रम-पटलोन्मीलित ज्ञानचक्षुओं से गोचरीभूत होता है। ऐसी ही दशा के प्राप्त होने पर (जो योगाभ्यास ही से होती है) कृष्ण सबमें और सब कृष्ण में दिखलाई पड़ते हैं। अनेकत्व में एकत्व (**Unity in diversity and diversity in Unity**) का उच्च दार्शनिक सिद्धान्त, जो 'उद्धव' जैसे प्रकट ज्ञानी को ही फबता है-कवि ने बड़े ही चातुर्य से काँच के टुकड़ों का दृष्टान्त देकर नं० ३१ के कवित्त में दर्शाया है। '**उद्धव**' गोपियों से यों कहते हुए उन्हें योग के द्वारा अन्तर्यामी भगवान् से मिलने का उपदेश देते हैं (कवित्त नं० ३२)। गोपियाँ इसे सुनकर बहुत ही विकल हो जाती हैं। उनकी दशाओं का मार्मिक और वास्तविक चित्रण सजीव और भावपूर्ण पदावली से कवित्त नं० ३३ में हुआ है।

पाठक स्वयं देखें कि गोपियाँ 'उद्धव' को जो उत्तर प्रथम देती हैं, वह सरल और स्वाभाविक-सा होता है हुआ भी ऐसा है कि तुरन्त ही हृदय में पैठ और बैठ जाता है। साधारणतः स्त्रियाँ दर्शन शास्त्र के अनेकत्व में एकत्व एवं ब्रह्म के विभुत्व आदि को कैसे समझ सकती हैं, न तो उन्होंने कभी इसे पढ़ा ही था और न कभी सुना ही। उनके तो हृदय हैं जिनमें भावनाओं का प्राधान्य एवं प्राबल्य है। उनके विवेक और ज्ञानपूर्ण मस्तिष्क नहीं। इसी लिए वे ज्ञानज्ञेय का विषय नहीं समझ सकतीं और अपने हृदय की बात पूछती हैं कि प्यारे कृष्ण कब आवेंगे और उन्हें वे कब देखेंगी (कवित्त नं० ३५)। उनका दूसरा प्रश्न है कि कृष्ण वहाँ क्या करते हैं। क्या कभी—"जाय जमुना-तट पै कोऊ बट-छाँहि माँहि पाँसुरी उमाहि कबौं बाँसुरी बजावैं हैं?"

निर्गुणोपासना के, जिसका उपदेश 'उद्धव' ने दिया है, विरोध में स्त्रियाँ अपने स्वाभाविक भावों के अनुसार अनेक बातें कहती हैं और सगुणोपासना की महत्ता को स्थापित करती हुई 'उद्धव' को उपहसित-सा करती हैं। हठयोग से शरीर में जो रूपान्तर हो जाते हैं, उनको भी गोपियाँ अपनी सौन्दर्य-रक्षा के प्रतिकूल समझकर बुरा बताती हैं और कृष्ण को प्रसन्न करनेवाले अपने शारीरिक सौन्दर्य को नहीं त्यागना चाहतीं।

'उद्धव' ने ब्रह्म को विश्व-व्यापी और अनन्त कहकर योग के द्वारा त्रिपुटी में रख आन्तरिक चक्षुओं से देखने का विधान बताया है। गोपियाँ अपने स्वाभाविक सारल्य से उसे न समझकर असम्भव और सन्दिग्ध मानती हैं। उनका कहना है कि अरूप, अनन्त और अलख विश्व-व्यापी ब्रह्म त्रिपुटी में कैसे देखा जा सकता है (कवित्त नं० ३९)।

अब आगे गोपियाँ शनैः-शनैः अपने मनोरंजक वाक्चातुर्य तथा बुद्धि के चमत्कार का परिचय बड़े कौशल से दे चलती हैं।

वस्तुतः ज्यों-ज्यों वार्तालाप बढ़ता है, त्यों ही त्यों वाणी विशेष खुलती जाती है, और अपना कौशल प्रकट करती हैं, प्रारम्भ में वह सरलता और स्वाभाविकता के ही साथ चलती हैं। यही बात यहाँ भी मिलती है। गोपियाँ उद्धव से प्रथम तो कुछ स्वाभाविक सयरपने से बातचीत करती हैं; किन्तु जब कुछ देर में वे उनसे हिल-मिल-सी जाती हैं (यह सोचकर कि वे उनके प्रेमी कृष्ण के मित्र हैं) और बातचीत करते हुए उनकी वाणी खुल जाती है तब वे चातुर्य-चमत्कार के साथ अपनी वाक्पटुता, हास्यप्रियता तथा तर्क-कुशलता के द्वारा 'उद्धव' को मुग्ध करने लगती हैं। उनकी इस चातुरी में भी एक विचित्र प्रकार की सरलता, स्वाभाविकता तथा स्त्रियोचित अल्पज्ञता की मनोरम माधुरी है।

'उद्धव' को निरुत्तर करने में सर्वथा अलम् जान पड़ता है। यहाँ गोपियों के स्वाभाविक सारल्य और अज्ञान का कैसा सुन्दर नमूना है। परमात्मा में आत्मा को लीन करके अपने अस्तित्व और अपनी स्वतंत्र सत्ता का नाश करना गोपियाँ आत्म-सम्मानी के लिये अभीष्ट नहीं मानतीं (कवित्त नं० ५१)। ठीक भी यही है।

प्राणायाम के विरोध में गोपियों का भोला-भाला कथन बड़ा ही मनोरंजक है। वे कहती हैं—"एकै बार लैहैं मरि मीच की कृपा सौं हम, रोकि रोकि साँस बिन मीच मरिबो कहा।"

बिना ब्रह्मज्ञान के गोपदरूपी भवसागर में पड़ने का जो डर 'उद्धव' ने दिखलाया है, गोपियाँ उसे इस आधार पर नहीं मानतीं कि वे मीन के समान गम्भीर प्रणय-रत्नाकर में निमग्न हैं।

"प्रेम रत्नाकर गंभीर परे मीनन को
इहि भव-गोपद की भीत भरिबो कहा।"

"वियोगानल की ज्वाला के सामने ब्रह्मज्योति कुछ है ही नहीं" इसी लिए गोपियाँ उसे अपने हृदय में स्थान देने में अपनी असमर्थता प्रकट करती हैं।

"कहै रतनाकर बरी हैं बिरहानल मैं
ब्रह्म की हमारैं जिय जोति जँचि है नहीं।"

नेत्रों के नीर और सीरी सीरी बात (बातें और हवा) से वियोग-ताप-प्रतप्त जिस हृदय को कुछ शीतल किया जा चुका है, उसे फिर ब्रह्म-ज्योति की उष्णता से प्रतप्त करना और जिस हृदय में उन्होंने कृष्ण को स्थान दे रक्खा है, उसी में ब्रह्म को बसाकर विश्वासघात करना गोपियों को इष्ट नहीं (कवित्त नं० ५६)। ठीक भी यही बात है।

गोपियाँ कृष्ण के मिल जाने पर ही योग आदि सब बातों को स्वीकार करने की बात कहती हैं।

उनका कहना है कि हम अपने प्राण-पट पर श्रीकृष्ण के चित्र को चित्रित कर अपने साथ ले जायँगी और ब्रह्म के रूप से उसे मिलायेंगी, यदि वह मिल गया तो बड़ी प्रसन्नता से ब्रह्म से मिल जायँगी, नहीं तो (उसके न मिलने पर) फिर यहीं वापस आयेंगी (कवित्त नं० ६३)।

दृष्टिकोण के भेद से ही वस्तुओं आदि में भेद दीखने लगता है। इसी से गोपियों का कहना है—

"ऊधौ ब्रह्म ज्ञान कौ बखान करते न नैकु
देख लेते कान्ह जौ हमारी अँखियान तैं"

उद्धव के ज्ञानार्क-ताप के प्रसार को देख गोपियाँ तनिक धमकी के साथ कहती हैं कि—

"यह वह सिंधु नाहिं सोखि जो अगस्त्य लियो,
ऊधौ यह गोपिन के प्रेम कौ प्रवाह है॥"

अब आगे चलकर वे 'उद्धव' पर दोषारोपण भी करती हैं, और बड़ी ही सुन्दरता से उनमें अपने अहित की आशंका करती हैं (कवित्त नं० ६८)।

लोकोक्ति है कि—"जैसे दध्यो दूध को पीवत छाँछहिं फूकि।"

ठीक यही दशा गोपियों की भी है, क्योंकि अक्रूर ने आकर उनके साथ एक प्रकार से (कृष्ण को ले जाकर) विश्वासघात-सा किया था। इसी लिये अब वे उद्धव का भी विश्वास नहीं करतीं और कहती हैं—

"लै गयो अक्रूर क्रूर तब सुख-भूर कान्ह,
आये तुम आज प्रान-व्याज उगहन को।"

सपत्नीक-भाव के उठने पर वे उद्धव को कुब्जा की ओर से आया हुआ समझती हैं और इसीलिए उन पर विश्वास भी नहीं करतीं।

"रसिक सिरोमनि को नाम बदनाम करौ
मेरी जान ऊधौ! क्रूर कुब्जा पठाये हौ।"

उद्धव का ज्ञान वस्तुतः गोपियों की अथाह भक्ति में ऐसा लुप्त हो जाता है कि उद्धव बस मंत्र मुग्ध से हो खड़े रह जाते हैं। इस प्रकार ज्ञान और योग के ऊपर भक्ति और प्रेम की विजय होती है। भक्तों का सदा ही से यही सिद्धान्त चला आया है—

"गुरु बिनु होइ कि ज्ञान, ज्ञान कि होइ विराग बिनु।
गावत वेद-पुरान, सो कि होइ हरि-भक्ति बिनु॥"—तुलसी

हमारी समझ में भक्ति और प्रेम के ज्ञान और योग पर विजय पाने का मूल सिद्धान्त हार्दिक-अनुभूति का बोध-वृत्ति से गुरुतर होना ही है। मानसिक भावनाओं की अनुभूति में मनोवृत्तियों (**Feelings**) और बोध-वृत्तियों (**Dognitive Faculties**) दोनों के अंशों का पर्याप्त सामञ्जस्य होता है। भक्ति और प्रेम का इसी से सम्बन्ध है। अतएव इनमें भी इन्हीं दोनों तत्त्वों की समष्टि रहती है। किन्तु बोधवृत्ति में मानसिक भावनाओं की अनुभूति के अंश का होना आवश्यक नहीं। इसी लिए बोधवृत्ति-सम्बन्धी ज्ञान में भी भावनाओं की अनुभूति नहीं रहती, और वह एक-देशीय ही रहता है। योग में तो वृत्तियों का नितान्त निरोध ही होता है :—"योगश्चित्त-वृत्तिनिरोधः।"—योगशास्त्र

इसी लिए मन और मस्तिष्क दोनों के तत्त्वों से निर्मित होनेवाली प्रेम-मयी भक्ति केवल मस्तिष्क-तत्त्व-जन्य ज्ञान और वृत्ति-निरोधोत्पन्न योग से

सर्वथा बलवत्तर ठहरती है। इसी विचार से भागवत आदि भक्ति-प्रधान ग्रन्थों में ज्ञान और योग के मूर्तिमान् उद्धव प्रेममयी भक्ति की मूर्तिमती गोपियों से पराजित से हो जाते हुए दिखलाये गये हैं।

'रत्नाकर' जी ने इस सम्बन्ध में अपने जो मौलिक दार्शनिक विचार जिनकी ओर हमने ऊपर संकेत किया है, दिये हैं, वे वस्तुतः हमारी समझ में और किसी भी कवि ने, जिसके द्वारा इस प्रसंग का काव्य रचा गया है, नहीं दिये।

पाठक कवित्त नं० ३७, ३९, ४०, ४२, ४४, ४५, ४६, ४७, ४८, ४९, ५०, ५१, ५३, ५५, ६३ इत्यादि को, जो उक्त कथन के ज्वलन्त उदाहरण हैं, स्वतः देख और समझ सकते हैं।

दर्शन-शास्त्र के सिद्धान्तों को लौकिक व्यवहार के क्षेत्र में वहीं तक प्रयुक्त किया जा सकता है, जहाँ तक उनमें उपयोगिता और उपयुक्तता का व्यापक

तत्त्व सन्निहित है। यदि उनमें उपयोगिता नहीं तो साधारण प्राणियों के लिए वे एक प्रकार से मूल्य-रहित ही से ठहरते हैं। इसी उपयोगिता-वाद (**Utilitarianism**) के आधार पर गोपियाँ कहती हैं—

"रावरो अनूप कोऊ, अलख अरूप ब्रह्म,
ऊधौ ! कहौ कौन धौं हमारे काम आइहैं"।।

यदि सूक्ष्म दृष्टि से देखा जाय तो कोई भी छन्द ऐसा नहीं जो अपनी महत्ता न रखता हो। प्रत्येक छन्द उत्कृष्ट भाव से भरा हुआ है।

बहुज्ञता का आभास

प्राचीन आचार्यों ने कवि का अनेक विषयों से परिचित होना अनिवार्य माना है। 'क्षेमेन्द्र' कवि ने इसे अपने ग्रन्थ में भले प्रकार दिखलाया है। वस्तुतः कवि को बहुविषयज्ञ होना आवश्यक है। जितने ही अधिक विशयों का

ज्ञान उसे होगा उतना ही उसका काव्य उत्कृष्ट, गम्भीर, भावपूर्ण तथा विद्वत्ता-पूर्ण हो सकेगा। इसका यह मतलब नहीं है कि कवि अपनी बहुज्ञता का प्रकाशन अपने काव्य में स्थान-स्थान पर करता ही रहे और इस बात का ध्यान न रक्खे कि कहाँ कैसा प्रसंग है, कैसी परिस्थिति है, कैसी आवश्यकता है, और कौन-सा भाव अभिप्रेत है। उसे इन सब बातों पर विचार करके ही अपनी बहुज्ञता को काम में लाना चाहिए। 'रत्नाकर' जी ने इसमें पूर्ण सफलता पाई है और इस छोटे से रत्नागार में भी अपनी बहुज्ञता का प्रकाश बड़ी चारुता और चतुरता से किया है।

वैद्यक, रसायनशास्त्र, मनोविज्ञान, वेदान्त, तर्कशास्त्र, योगदर्शन और विज्ञान के सिद्धान्तों को लेकर ऐसी सुन्दरता के साथ उन्हें अपने भावों में व्यञ्जक रूप से ऐसा घटित किया है कि उससे काव्य में अनोखा उत्कर्ष और चोखा प्रभाव आ गया है। यह अवश्य है कि ऐसा करने में श्लेषादि अलंकारों

की अच्छी सहायता ली गई और पाण्डित्य के साथ काव्य-कला-कौशल की चारुता दिखलाई गई हैं; किन्तु कवि के लिए यह विधान अनिवार्य ही ठहरता है।

वैद्यक में विषम ज्वर (उतर-चढ़कर आनेवाला एक प्रकार का ज्वर और वियोग-ताप) की ओषधि सुदर्शन चूर्ण कही गई है और वैद्यों के मतानुसार नाड़ी से रोग की परीक्षा करके उपचार का विधान बताया गया है। इसी साधारण बात को लेकर 'रत्नाकर' जी ने गोपियों के मुँह से श्लिष्ट शब्दों के द्वार। मर्मस्पर्शिणी व्यञ्जना के साथ कृष्ण के पत्र के सम्बन्ध में कैसा सुन्दर भाव कहलाया हैं (छन्द नं० ३४)।

वैद्य लोग रसायन-शास्त्र के अनुसार पारे का भस्म तैयार किया करते हैं। 'रत्नाकर' जी ने भी कैसा व्यञ्जनामय भाव रखकर इस रासायनिक प्रक्रिया को घटित किया है और उसी में सोना रखकर एक प्रेम-रसायन बनाया है। यह

साधारण दवा का काम नहीं देता वरन् ऐसी दवा का काम देता है जिससे प्रेमी हृदय शक्ति पाता है (छन्द नं० १०१)।

उद्धव इसी रसीले रसायन को, जो विरहाग्नि के ताप से हृदयान्तर की आहों में तपाया जाकर विधानपूर्वक ज्ञान-गन्धक आदि से तैयार किया गया है, लेकर मथुरा लौट आते हैं (छन्द नं० १०४)।

विज्ञान के प्रकाश एवं प्रतिबिम्ब-सम्बन्धी सिद्धान्त को लेकर 'रत्नाकर' जी गोपियों के मुँह से कितनी सुन्दर भाव-व्यञ्जना का चित्रण कराया है। वस्तुतः यदि दर्पण के सम्मुख कोई व्यक्ति उसके निकट खड़ा होकर अपने प्रतिबिम्ब को देखे तो उसका प्रतिबिंब दर्पण के ऊपरी धरातल पर ही पड़ता हुआ दिखलाई पड़ता है; किन्तु जैसे ही जैसे वह उससे दूर हटता हुआ अपने प्रतिबिंब को देखता है वैसे ही उसे वह प्रतिबिंब दर्पण के भीतर प्रविष्ट

होता हुआ दिखलाई पड़ता है। इसी को कवि ने गोपियों के मन को दर्पण बनाकर उस पर दूरस्थित श्रीकृष्ण की मूर्ति को मन में और अधिक धँसती हुई दिखलाकर घटित किया है। कितनी सुन्दर भावना है और कितनी सुन्दर कल्पना की व्यञ्जना है—

"ज्यों ज्यों बसे जात दूरि दूरि प्रिय प्रान-मूरि,
त्यौं त्यौं धँसे जात मन-मुकुर हमारे में।।"

वेदान्त-सम्बन्धी सिद्धान्तों के विषय में पाठक ऊपर पढ़ ही चुके हैं। मनोविज्ञान-विषयक बातें भी इसमें बड़ी ही सुन्दरता के साथ व्यंजित की गई हैं। गोपियों की प्रेम-पूर्ण भावनाओं का बड़ा ही स्वाभाविक और मर्म-स्पर्शी चित्रण किया गया है। प्रेमोद्वेग से मन और शरीर की जो-जो दशाएँ होती हैं, वे स्थान स्थान पर बड़ी स्वाभाविकता, स्पष्टता और चित्रोपमता के

साथ मर्मस्पर्शिणी एवं सजीव भाषा में व्यक्त की गई हैं। विस्तार-भय से हम छन्दों की संख्याएँ ही देकर पाठकों से उनके अवलोकन एवं मनन करने का अनुरोध करते हैं।

छन्द नं० २, ३, ४, ७, १२, २०, २१, २४, २५, २६, २७, २८, २९, ६०, ६१, ९४, ९५, ९८, १००, १०२, १०३, १०६, १०८, १०९, १११, ११४।

प्रथम तो हृदय में भावों का उठना ही कठिन होता है और यदि भाव उठें भी तो उनका शब्दों के द्वारा उपयुक्त भाषा में स्वाभाविकता तथा सत्यता के साथ व्यक्त करना और उस पर भी काव्य-कला-कौशल से उन्हें अलंकृत करना और भी कठिनतर कार्य होता है। यदि यह भी हो गया तो कल्पना से प्रसंगानुकूल यथोचित भावनाओं का मार्मिक व्यञ्जना के साथ सजीव भाषा में साकार खड़ा करना तो कठिनतम ही कार्य होता है। कहना न होगा

कि इन सब बातों में जो सराहनीय सफलता प्राप्त करता है, वही उच्च कोटि के महाकवि की उपाधि के पाने का अधिकारी ठहराता हैं। इस कसौटी पर यदि हम इस काव्य को कसकर देखते हैं तो हमारा हृदय निष्पक्ष भाव के साथ मुक्त-कंठ से "धन्य हैं महाकवि रत्नाकर" यही कहता है।

उद्धव के ज्ञानोपदेश तथा योगाभ्यास करने के आदेश को सुनकर गोपियों ने जो उत्तर दिये हैं उनमें 'रत्नाकर' जी ने सरलता, स्वाभाविकता, भोलेपन से मिली हुई अल्पज्ञता के साथ ही साथ ऐसे सुन्दर तर्क का उपयोग किया है कि उसे सुनकर प्रकांड ज्ञानी उद्धव भी निरुत्तर हो जाते हैं। इतना ही नहीं, गोपियों के भोले-भाले उत्तरों से वे सर्वथा प्रभावित भी हो जाते हैं। यहीं पर कवि के चातुर्य्य तथा उसके भाषा-प्रयोग-पटुत्व का पूरा परिचय मिलता है। सीधे-सादे भावों को बड़े ही कौशल के साथ उन्होंने ऐसी सबल और

भावपूर्ण भाषा में रखा है कि वे बिना हृदय पर अपना प्रभाव डाले रह ही नहीं सकते। यही तर्क की तरुण शक्ति है।

योग-सम्बन्धी प्राणायाम, समाधि, ध्यान-धारणा आदि की ओर उद्धव के द्वारा संकेत कराते हुए कवि ने अपने योग-विषयक ज्ञान का भी परिचय दिया है, और साथ ही गोपियों के द्वारा इन सबका जैसा अवलोकनीय या पठनीय उपहासात्मक चित्रण कराया है, पाठक उसे छन्द नं० ३८, ३९, ४०, ४५, ४७, ५१, ५३, ५७ आदि में स्वयं देख सकते हैं। उनका हृदय उछलकर बार बार यही कहेगा : "धन्य हैं 'रत्नाकर' धन्य हैं।"

उद्धव-शतक की भाषा

आज हिन्दी-संसार का कोई भी ऐसा व्यक्ति नहीं है जिसे यह न ज्ञात हो कि महाकवि 'रत्नाकर' ब्रजभाषा के परम प्रेमी और मर्मज्ञ हैं। उन्होंने

आज तक केवल ब्रज-भाषा में ही रचना की है। ब्रज-भाषा के लिए वे बहुत समय तक ब्रज में रहे और ब्रज-भाषा के साहित्य का उन्होंने आद्योपान्त अध्ययन भी किया। आज ब्रज-भाषा और उसके साहित्य में यदि पूर्ण पटुता किसी को प्राप्त है तो वह 'रत्नाकर' जी की ही कही जा सकती है। अस्तु, इस काव्य की भाषा भी शुद्ध ब्रज-भाषा ही है। ब्रज-भाषा को साहित्योचित एकरूपता देने का जो कार्य आचार्य केशव के द्वारा उठाया गया था तथा महाकवि बिहारीलाल के द्वारा आगे बढ़ाया जाकर कविवर घनानंदादि के द्वारा प्रौढ़ किया गया था वही अब 'रत्नाकर' जी के द्वारा पूर्ण किया गया है, अर्थात् 'रत्नाकर' जी ने हिन्दी-साहित्य के क्षेत्र में पूर्ण प्रधानता प्राप्त करनेवाली सर्वमान्य ब्रज-भाषा को वह निश्चित एकरूपता दी है, जो साहित्यिक भाषा के लिए, अनिवार्य ही ठहरती है और जिसके ही आधार पर स्थायी साहित्य रचना की जा सकती है।

यद्यपि ब्रजभाषा के अनेक कवि हुए हैं तथापि प्रायः किसी ने भी क्रियाओं और कारकों आदि के रूपों को निश्चित बिधान से स्थिरता देने की ओर ध्यान नहीं दिया। इसी लिए एक ही काल की क्रिया के कतिपय रूप पाये जाते हैं। उदाहरणार्थ पाठक 'देना' क्रिया के सामान्य भूतकालवाले रूप (दीन, दियो, दीन्ह्यो आदि) देख सकते हैं। यद्यपि इन बहुरूपता में भी कुछ उपयोगिता एवं लाभ की मात्रा है तथापि साहित्योचित भाषा की मर्यादा के लिए इससे कुछ हानि भी है। इसी प्रकार कारकों के रूपों में भी बहुरूपता पाई जाती है जो साहित्यिक भाषा के लिए उपयुक्त नहीं ठहरती। इस प्रकार की बातों के साथ ही साथ लिंग-रचना-सम्बन्धी रूपों और विधानों में भी अनेकरूपता का आभास पाया जाता है। शब्दों के शुद्ध उच्चारण (हिज्जे या **spelling**) और उनके लिखने में भी रूपान्तर देखे जाते हैं। इन्हें एक निश्चित व्यव-

स्थात्मक रीति से निश्चित रूप कर स्थिर करने का कार्य किसी ने भी पूर्ण रूप से न किया था। हाँ, बिहारीलाल और घनानन्द ने इस ओर कुछ स्तुत्य प्रयत्न किया है, किन्तु इसकी पूर्ति वे भी न कर सके। महाकवि 'रत्नाकर' ने इस वर्तमान समय में, जब खड़ीबोली के राज्य में ब्रज-भाषा की मधुर और सुरीली पदावली शुद्ध एवं पूर्णरूप में सुनाई भी नहीं पड़ती, यह सराहनीय कार्य गौरवपूर्ण सफलता के साथ किया है। कहने का तात्पर्य यह है कि 'रत्नाकर' जी के इस काव्य में ब्रज-भाषा का वह शुद्ध रूप मिलता है जिसमें साहित्योचित एकरूपता है।

"कविहिं अरथ आखर बल साँचा" के अनुसार कवि के लिए भाषा ही एक सच्चा और स्वाभाविक बल है। कहा जाता है कि काव्य में भाव की ही प्रधानता होनी चाहिए और उसी को ही प्राधान्य दिया जा सकता है।

ठीक है, किन्तु यदि विचारपूर्वक देखा जाय तो भाव की अपेक्षा भाषा ही अधिक प्रधानतर ठहरती है। मान लिया कि भाव बहुत उत्तम है; किन्तु यदि उसको व्यक्त करनेवाली भाषा सबल और सजीव नहीं है तो वह उत्तम भाव कवि के हृदय में ही रह जायगा और श्रोताओं तथा पाठकों के लिए अलभ्य ही-सा हो जायगा। यह भी संभव है कि उस भाव के स्थान पर पाठक या श्रोता कोई दूसरा भाव, जो कवि की पदावली से साधारणतया झलकता है, निकाल बैठे। इसी लिए हम समझते हैं कि हमें भाव की अपेक्षा उसको व्यक्त करनेवाली भाषा की ही महत्ता तथा प्रधानता को अधिक मानना चाहिए। वस्तुतः भाव भाषा में ही रहता है। इसलिए यदि कवि भाषा-पटु अथवा मर्मज्ञ है और उसके उपयोग में उसे पूरी कुशलता प्राप्त है, तो वह अपने साधारण भाव को भी अपनी सुन्दर भाषा के द्वारा ऐसे चमत्कृत रूप में रख सकेगा कि पाठक और श्रोता उससे मुग्ध हो ही जायँगे।

यहाँ यह भी कह देना असंगत नहीं है कि काव्य के लिए भाषा को एक विशेष प्रकार से रूपान्तरित करके रखा जाता है और इसमें सफलता प्राप्त करनेवावे कवि ही महाकवि ठहरते हैं। तनिक ध्यान देने से ही यह ज्ञात हो जाता है कि वास्तव में कवि और कविता के लिए एक दूसरे प्रकार की भाषा समापेक्षित होती है। साधारण गद्य की भाषा में कवि पूर्ण कुशलता और पूर्ण सफलता से सत्यकाव्य की रचना नहीं कर सकता। जो लोग काव्य-रचना के क्षेत्र में कार्य करते हैं और कवि-कर्म की ओर पूर्ण ध्यान देते हैं उन्हें तो इसका अनुभव अति शीघ्र और अवश्य ही हो जाता है। खड़ीबोली के काव्य को यदि आज यथेष्ट सफलता नहीं मिल रही है, तो उसका एक मुख्य कारण यह भी है कि उसका अभी काव्योचित रूप नहीं बन सका और खड़ीबोली के कवि अपने काव्य में उसका उसी रूप में उपयोग करते हैं जो

साधारणतया बोल-चाल और गद्य लिखने में व्यवहृत किया जाता है। हमारे प्राचीन कविवरों ने इस पर पूर्ण विचार करके ब्रज-भाषा को काव्योचित बनाने का पूर्ण प्रयत्न किया है और उसे ऐसा बना दिया है कि वह अपने गुणों से काव्य में बहुत बड़ी सुन्दरता तथा रमणीयता ला उपस्थित करती है। साधारण से साधारण रचना भी ब्रज-भाषा की कमनीय कोमलता, मनमोहिनी मधुरता और मंजुलता के प्रभाव से मनोरंजन तथा चारु चोखी लगने लगती हैं। यदि उसमें अर्थ गौरव, पदलालित्य और चमत्कृत-चातुर्य्य का भी यथोचित समावेश कर दिया जाय तो यह 'सोना और सुगन्ध' की कहावत को भी चरितार्थ करने लगती है।

भाषा की कसौटी उसकी स्वाभाविक अर्थ-शक्ति ही है अर्थात् भाषा वही है जो मानसिक भावों एवं भावनाओं को स्वाभाविक यथार्थता और स्पष्टता के साथ सुव्यक्त कर दे। ऐसी ही भाषा के उपयोग से कवि अपने

कर्म्म में सफलता पाता है और उसे इसी लिए अपने भावों को वास्तविक रूप में व्यक्त करने के लिए उपयुक्त शब्दों की कठिन चिन्तना और खोज करनी पड़ती है। अपने भावों के अनुकूल उसे शब्द चुन-चुनकर सुव्यवस्था के साथ अपनी पदावली का निर्माण करना और उसके द्वारा अपना भाव-व्यञ्जक वाक्य-विन्यास बनाना पड़ता है। इसी लिए कहा गया है—

"चरन धरत, चिन्ता करत, चितवत चारिहु ओर।
सुबरन को खोजत फिरत कवि, व्यभिचारी, चोर॥"

इसके साथ ही कवि को अपनी भाषा में मनोरंजकता, सबलता और सजीवता लाते हुए उससे हृदयाकर्षण करने के लिए वाग्वैचित्र्य और कला-कौशल का रंग भी उस पर चढ़ाना पड़ता है, उसे चमत्कृत और सुसज्जित भी करना पड़ता है, तभी कवि मानव-हृदय पर अधिकार कर पाता है।

काव्य की भाषा में इस बात का सदा ध्यान रखना चाहिए कि वह सब प्रकार व्याकरणानुमोदित, नियम-नियन्त्रित, लौकिक-प्रयोगानुकूल, संयत और सुव्यवस्थित रहे। उसमें किसी प्रकार भी शिथिलता, अस्पष्टता और निरर्थकता न हो। उसकी पदावली कसी हुई, भाव-पूर्ण और निर्दोष रहे। ग्रामीण, अप्रयुक्त और व्यर्थ के अशुद्ध शब्द, जिनसे काव्य में अनीप्सित दुरूहतादि के दोष आ जाते हैं, सदैव त्याज्य होने चाहिए। इस प्रकार की भाषा के बिना उत्कृष्ट और स्तुत्य काव्य की सृष्टि कदापि नहीं हो सकती।

कवि को अपनी पदावली में शब्दों का संचयन तथा संगठन ऐसा ही करना चाहिए कि उससे कोई भी शब्द किसी भी प्रकार कहीं से भी, निकाला न जा सके और यदि निकाल दिया जाय तो उससे भाव और भाषा को पूरी क्षति पहुँचे। प्रत्येक शब्द जब तक अपनी अनिवार्य्य सत्ता और यथोचित महत्ता

का रखनेवाला नहीं होता तब तक उसके प्रयोग से अभीष्ट लाभ हो ही नहीं सकता।

शब्द-संगठन के अतिरिक्त काव्य में वाक्य-विन्यास के वैशिष्टय या वैलक्षण्य की भी महती आवश्यकता रहती है। उच्च कोटि के काव्य में तो वाक्य-विन्यास ही को विशेष प्रधानता दी जाती है, और इसी लिए चतुर कवि अपने सत्काव्य में सदा ही ऐसा वाक्य-विन्यास रखते हैं जो सर्वथा सुसंगठित, भावपूर्ण और गाम्भीर्य्यमय रहता है, जिससे अभीष्ट भाव-भावनानुभूति की मर्मस्पर्शिणी व्यञ्जना का पूर्ण आभास प्राप्त होता है।

प्रस्तुत काव्य की भाषा पर, इन मुख्य बातों को ध्यान में रखते हुए, जब हम दृष्टिपात करते हैं, तब यह स्पष्ट हो जाता है कि इस काव्य की भाषा उक्त सभी गुणों से सर्वथा समलंकृत है। उक्त विशेषताओं के अतिरिक्त इसकी

भाषाओं में चित्र-चित्रण शक्ति भी अपने बहुत ही सुन्दर रूप में पाई जाती है, क्योंकि इसकी पदावली में समूर्त पदों का भी सुचारु संगुम्फन किया गया है और वाक्य विन्यास भी इस प्रकार का रक्खा गया है कि उसमें वर्णित वस्तु को सामने चित्रित करके सजीव खड़ा करने की पूरी क्षमता आ गई है।

सर्वत्र भाषा में सजीवता और साकारता की शालिमा मिलती है। भावव्यञ्जना और मानसिक अनुभूति के साथ ही साथ, कुशल कल्पना भी निखरी और बिखरी हुई पाई जाती है। शब्द-संचयन इतना ऊँचा हुआ है, कि उसमें कहीं भी किसी प्रकार का शैथिल्यादि दोष नहीं मिलता। प्रत्येक शब्द भावपूर्ण, सबल और चरितार्थ ही मिलता है। भावनाओं के प्रकट करने में जिन मार्मिक शब्दों की माला बनाई गई है उन्हें देखकर यही कहना पड़ता है कि कवि ने मानव-प्रकृति और मानव-हृदय की मर्मज्ञता प्राप्त करने में बड़ी

ही सफलता और श्रम के साथ एक स्तुत्य शब्द-संचयन किया है। ऐसे ही स्थानों में पूर्ण स्वाभाविकता, यथार्थता और सबलता मिलती है, जिससे प्रकाशित की हुई भावनाएँ सजीव और साकार होकर हृदय में पैठ और बैठ जाती हैं।

एक विशेषता यहाँ पर और यह अवलोकनीय है कि प्रत्येक शब्द अपने सहगामी अन्य शब्दों को पूरा साहाय्य और उत्कर्ष भी देता है। शब्द एक दूसरे से सर्वथा परिपुष्ट होकर भावादि का संवर्द्धन और संविकासन करते हुए चलते हैं। कहने का तात्पर्य यह है कि भाषा यहाँ भाव की पूरी सहगामिनी बन रही है और उससे यही प्रकट होता है कि भाषा भाव के अनुसार और भाव भाषा के अनुसार चल रहे हैं। संज्ञाओं और विशेषणों का प्रयोग बहुत ही उचित और मार्मिक हुआ है। भावों के अनुकूल ही संज्ञाएँ और उनके विशेषण रक्खे गये हैं तथा वे पूर्ण रूप से चरितार्थ भी किये गये हैं।

अब यदि काव्य-भाषा की शास्त्रीय कसौटी पर प्रस्तुत काव्य की भाषा को कसें तो शास्त्रीय पद्धति की आलोचना के रूप में कह सकते हैं कि उसमें भाषा के वे सभी गुण अथवा लक्षण विद्यमान हैं जिनका होना आचार्य्यों ने आवश्यक ठहराया है। प्रसाद और माधुर्य दोनों गुण समस्त काव्य में सर्वत्र पाये जाते हैं। इन्हीं के साथ ही लालित्य की भी पूरी पुट सर्वत्र लगी हुई है। इन गुणों पर कान्ति नामी गुण का कान्तिमय सुन्दर रंग भी चढ़ा दिया गया है। चूँकि यह शृंगार (विप्रलम्भ अथवा वियोग) रस का काव्य है, इसलिए उसके अनुकूल उपनागरिक एवं कोमल वृत्तियों तथा वैदर्भी और पाञ्चाली, नामी रीतियों को ही प्रधानता देते हुए रचना की गई है। स्थानाभाव से हम यहाँ इसकी विशेष विवेचना न करने के लिए बाध्य हैं।

सबसे बड़ी बात जो यहाँ हम देखते हैं यह है कि इस काव्य में कहीं भी

ऐसे किसी भी वर्ण का प्रयोग नहीं किया गया, जो गुरु होकर लघु-रूप में पढ़ा जाय अथवा लघु होकर गुरु रूप में पढ़ा जाय। ऐसा न होने से छन्द की गति अथवा उसके प्रवाह में खटकनेवाली लचक नहीं आती और छन्द की धारावाहिता अविरल रूप में अग्रसर होती चलती है, जिससे छन्द की संगीतात्मक लय बड़ी ही चारुता, सरलता और रोचकता से प्रगतिशील होती जाती है।

यद्यपि छन्दःशास्त्र में दीर्घ वर्ण को लघु और लघु को दीर्घ मानकर (यथा आवश्यकता) पढ़ने की आज्ञा अथवा स्वतन्त्रता दे दी गई है और कवियों ने इसका उपयोग भी किया है तथापि हम समझते हैं कि कवि की सफलता तभी स्तुत्य है जब उसे इस रियायत या कवि स्वातन्त्र्य का सहारा न लेना पड़े। हिन्दी-साहित्य में बहुत ही कम कवि ऐसी सफलता प्राप्त कर सके हैं।

कुछ लोग कवि के भाषा-पाण्डित्य का अनुमान इस बात से भी करते हैं

कि उसने कितने नवीन और कैसे मार्मिक शब्दों का प्रयोग अपने काव्य में किया है। इसके आधार पर भी यदि हम इस काव्य को जाँचते हैं तो ज्ञात होता है कि कवि ने इसमें भी अच्छी सफलता पाई है। बहुत से ऐसे शब्द हैं जो भावानुभूति व्यञ्जक और मुक्तक-परम्परा से नितान्त मौलिक हैं। उदाहरणार्थ, ऐसे शब्द लिये जा सकते हैं—

थहिवा, अकह, गहबर, सकस्योई, भकुवान इत्यादि।

कहीं-कहीं पर शब्द-युग्मक (एक साथ युग्म बनाकर चलनेवाले शब्द) को तोड़कर रूपान्तर के साथ भी रक्खा गया है। यथा—

"हा! हा! इन्हें रोकन कौ टोंक न लगावो।"

नोट—साहित्यिक-ब्रज-भाषा के विकासादि का विशेष विवरण देखिये हमारे "ब्रजभाषा-पीयूष" नामक ग्रन्थ में।

छंद

यह प्रथम ही कहा जा चुका है कि इस काव्य में केवल घनाक्षरी या कवित्त नामक छन्द का ही प्रयोग किया गया है। मुक्तक काव्य के लिए यह छन्द बहुत ही उपयुक्त समझा गया है और इसीलिए मुक्तक काव्य लिखनेवाले सभी कवियों ने प्रायः इसी छन्द में रचनाएँ की हैं। शृंगार और वीर दोनों रसों के लिए यह अच्छा समझा गया है, क्योंकि तनिक ही लयान्तर से यह दोनों रसों के अनुकूल बन जाता है।

इस छन्द की रचना के विषय में छन्द शास्त्र कोई भी व्यापक और निश्चित नियम नहीं देता। हाँ, इतना अवश्य कहता है कि यह वर्णिक वृत्त है; इसमें ८, ८, ८ और ७ के क्रम से १६ और १५ पर विराम या यति देते हुए ३१ वर्ण लिखे जाते हैं और इसकी गति पर ही विशेष ध्यान दिया जाता है। किन्तु यदि विचारपूर्वक देखा जाय तो यही ज्ञात होता है कि यह

केवल वर्णिक वृत्त ही नहीं है वरन् मात्राओं तथा गुरु-लघु-मूलक गणों के प्रभाव से भी प्रभावित रहता है। इस छन्द की रचना भी भिन्न-भिन्न कवियों ने भिन्न भिन्न रूपों में की है।

जहाँ तक हम समझते हैं, कवित्त मुख्यतः दो भिन्न प्रकार की गतियों के आधार पर रचा जाता है। एक गति तो ऐसी होती है कि वह अविरल रूप से शब्दों को एक सुसंगठित शृंखला में रखकर एक लम्बी और अबाध लय से चलती है। इस गति के अनुसार कवित्त की रचना प्राचीन कवियों ने बहुत की है। कवित्त की दूसरी गति वह है जिसमें कवित्त की लय कुछ निश्चित अवकाश पर स्वल्प विश्राम के साथ अग्रसर होती है। ऐसा ही कवित्त सर्वथा शुद्ध माना जाना चाहिए जो दोनों गतियों में सुन्दरता और रोचकता के साथ पढ़ा जा सके। इस प्रकार की गतिवाले कवित्त जैसी सफलता के साथ 'पद्माकर' ने लिखे हैं और किसी दूसरे कवि ने नहीं लिखे। इस काव्य में जितने भी

कवित्त हैं, सभी सर्वांग शुद्ध और दोनों गतियों से पढ़े जा सकते हैं। हम कह सकते हैं कि यदि कवित्त लिखने में 'पद्माकर' के अतिरिक्त और किसी ने ऐसी सफलता प्राप्त की है तो वह 'रत्नाकर' ही हैं। अपने समय में तो वे एक ही थे।

काव्य-कौशल

यद्यपि यह एक छोटा-सा ही काव्य है, तथापि यह काव्य-कौशल इतनी प्रचुर मात्रा में है कि इसका यह लघु आकार इसके पाण्डित्य-पूर्ण काव्य-कौशल के कारण और भी स्तुत्य हो जाता है। इतने छोटे से काव्य में इतने कौशल का होना कवि की पाण्डित्य-पूर्ण प्रतिभा का परिचायक है।

यह स्पष्ट ही है कि इस काव्य में विप्रलम्भ श्रृंगार (करुणा-भक्ति-प्रेम) तथा शान्तरस का प्राधान्य है, भक्ति और प्रेम की, जिन्हें श्रृंगार के ही अंग मानते हैं महत्ता और सत्ता स्थापित की गई है।

कृष्ण और गोपिकाएँ आलम्बन के रूप में और गोकुल, जो प्रेम-लीलाओं

का मुख्य स्थान है और जहाँ की वायु तथा भूमि आदि प्राकृतिक पदार्थों पर भी कृष्णानुराग का रंग चढ़ा हुआ है, और उद्धव के द्वारा लाई गई प्रेम-पत्रिका उद्दीपन के रूप में लिये जा सकते हैं। प्रेम और भक्ति से परिप्लावित कृष्ण, गोपियों और आगे चलकर भक्ति और प्रेम रस से सिंचित उद्धव में पुलकावली, अश्रु-प्रवाह, उच्छ्वास, कंठावरोध, प्रस्वेद, वैवर्ण्य, कम्प, शैथिल्य, मोह-प्रमाद आदि अनेक अनुभव यथोचित रूप से यथास्थान प्रदर्शित किये गये हैं। पूर्व-स्मृति की धारा तो कहीं-कहीं पर ओझल-सी होती हुई और कहीं-कहीं पर पूर्ण रूप से प्रकट होकर प्रवाहित होती हुई ज्ञात होती है।

कहीं-कहीं तो अनेक अनुभावों का सुष्ठु संगुम्फन बड़ी ही चातुरी और रुचिरता से किया गया है (देखो छन्द नं० २८, २९, १०२, १०३, १०६, १०८ इत्यादि)।

दीन दसा देखि ब्रज बालनि की ऊधव कौ,
गरि गौ गुमान ज्ञान-गौरव गुठाने से।

कहै 'रत्नाकर' न आए मुख बैन, नैन,
नीर भरि ल्याए, भए सकुचि सिहाने से ।।
सूखे से, भ्रमे से, सकबके से, सके से, थके,
भूले से, भ्रमे से, भभरे से, भकुवाने से।
हौले से, हले से, हूल-हूले से, हिये में हाय,
हारे से, हरे से, रहे हेरत, हिराने से ।।

यह एक स्वाभाविक बात है कि जिस समय कोई त्यौहार आता है उस समय सबको, विशेषतया स्त्रियों को, अपने-अपने प्रियजनों का, प्रेम के कारण, बार-बार ध्यान या स्मरण आता है। प्रेमिकाएँ तो अपने प्रेमियों के बिना त्यौहार मनाती ही नहीं और यदि मनाती भी हैं तो रो रोकर दुःख के साथ ही। इसी का कैसा सुन्दर वर्णन छन्द नं० ८५, ८६ में किया गया है—

आवत दिवारी बिलखाइ ब्रजवारी कहैं
अब कैं हमारैं गाँव गोधन पुजैहै को।

कहै 'रतनाकर' बिबिध पकवान चाहि,
चाहि सौं सराहि चख चंचल चलैहै को।।
निपट निहोरि जोरि हाथ निज साथ उधो!
दमकति दिव्य दीपमालिका दिखैहै को।
कूबरी के कूबर तैं उबरि न पावैं कान्ह,
इन्द्र-कोप लोपक गुबर्धन उठैहै को।।

श्रृंगारात्मक मुक्तक काव्य में षड्ऋतु-वर्णन-सम्बन्धी रचना-शैली का प्रचार पहले बहुत रहा है और बहुत से प्राचीन कवियों ने षड्ऋतु लिखा भी है। श्री 'रत्नाकरजी' ने भी इस काव्य में षड्ऋतु के वर्णनवाले छः छन्द दिये हैं। वास्तव में यह षड्ऋतु-वर्णन अपने ढंग का अद्वितीय ही है। छः ऋतुओं के लिए केवल छः छन्द ही लिखे गये हैं, अर्थात् प्रत्येक ऋतु के लिए एक ही छन्द है। विशेषता यहाँ यह है कि प्रत्येक ऋतु में प्रकृति की समस्त

मुख्य बातों तथा दशाओं को वियोग-विह्वल ब्रज पर ही घटित किया गया है। एक ओर तो प्रकृति-चित्रण है और दूसरी ओर वियोग व्यञ्जना से पूर्ण ब्रज का निरूपण है। समस्त पदावली इसीलिए श्लिष्ट रक्खी गई है। कहीं-कहीं शब्द-युग्मक (मुहावरे के अनुसार साथ चलनेवाले दो शब्द) भी श्लिष्ट रूप में रखकर सार्थक किये गये हैं। यथा—

"काम-विधि बाम की कला मैं मीन-मेष कहा....."

छन्द नं० ८७

भक्त कवियों ने ब्रज को अपने आराध्य या इष्टदेव का लीला-धाम समझकर उसकी भी बड़ी ही मार्मिक प्रशंसा या स्तुति की है। यह एक साधारण-सी बात है कि भक्त और प्रेमी को अपने आराध्य देव तथा प्रेम-पात्र की सभी वस्तुएँ उतनी ही अच्छी लगती हैं और उनमें भी उसका उतना ही अनुराग होता है जितना इष्टदेव या प्रेम-पात्र में। 'रत्नाकरजी' ने भी

इसी के अनुसार ब्रज और बरसाने आदि की व्यञ्जनामयी मार्मिक महत्ता दिखलाई है। उद्धव ब्रज की बड़ाई करते हुए कहते हैं—

"छावते कुटीर कहूँ रम्य जमुना कै तीर,
गौन रौन-रेतीं सौं कदापि करते नहीं।
कहै 'रतनाकर' बिहाय प्रेम-गाथा गूढ़,
स्रौन-रसना मैं रस और भरते नहीं॥
गोपी-ग्वाल-बालनि के उमड़त आँसू देखि,
लेखि प्रलयागम हूँ नैकु डरते नहीं।
होतौ चित्त चाव जौ न रावरे चितावन कौ,
तजि ब्रज-गाँव इतै पाँव धरते नहीं॥"

कवि-कल्पना के लिए सबसे बड़ी प्रशंसनीय बात यही है कि वह अपनी प्रतिभा से जिस बात का भी चित्रण करे, उसे स्वाभाविक और सजीव

बिना अनुभूति व्यञ्जना के साथ साकार रूप में सामने खड़ा कर दे। 'रत्नाकर' जी की प्रौढ़ प्रतिभा और कल्पना में यही जादू है। वे परिस्थिति, प्रकृति और हृदय की ऐसी मर्मज्ञता के साथ जाँच करते हैं कि उसमें तनिक भी बल नहीं पड़ने पाता। इसका ज्वलन्त उदाहरण हमें यहाँ उस कवित्त में मिलता है जिसमें उद्धव के मथुरा को प्रयाण करने और यशोदा, राधिका तथा गोपियों के द्वारा कृष्ण के लिए प्रेमोपहार या भेंट देने की बात कही गई है (छन्द नं० ९७)।

धाई जित-तित तैं बिदाई-हेतु ऊधव की,
गोपी भरीं आरति सँभारति न साँसुरी।
कहै 'रतनाकर' मयूर पच्छ कोऊ लिये,
कोऊ गुंज-अंजली उमाहे प्रेम-आँसुरी।

भाव-भरी कोऊ लिये रुचिर सजाव दही,
कोऊ मही मंजू दाबि दलकति पाँसुरी।
पीत पट नंद, जसुमति नवनीत नयौ,
कीरति कुमारी सुरवारी दई बाँसुरी॥

जहाँ गोपियाँ कृष्ण के लिए उद्धव से अपने सन्देश कहती हैं वहाँ जो छन्द लिखे गये हैं वे वस्तुतः साहित्य में बेजोड़ ही से हैं।

कितना अच्छा अभिनय-प्रधान सन्देश और दशा-निवेदन का कैसा चारु-चित्रण मानसिक और शारीरिक अवस्थाओं की पूर्ण सूचना देनेवाली व्यञ्जना के साथ छन्द नं० ९४ में किया गया है। गोपियाँ कहती हैं कि तुम कृष्ण से यही कहना, और ऐसा नाट्य करके हमारी दशा को निवेदन में सजीव और साकार करके प्रत्यक्षीकृत कर देना, पहले तो यही कहना—

"हाल कहा बूझत , बिहाल परी बाल सबै,
बसि दिन द्वैक देखि दृगनि सिधाइयौ।"

यदि—"औसर मिलै औ सर-ताज कछू पूछहिं तौ,
कहियौ कछू न दसा देखी सो दिखाइयौ।"

(क्योंकि ऐसा करने से सब वृत्तान्त उनकी आँखों के सामने साकार खड़ा हो जायगा और उसे देखकर सम्भव है, वे हमारी दशा का अनुमान कर लें और करुणा तथा दया से कुछ पिघल जायँ)

"आह कै, कराहि, नैन नीर अवगाहि, कछू
कहिबै कौं चाहि, हिचकी लै, रहि जाइयौ।"

यही अभिनय करना। किन्तु यदि तुम समझो कि कुछ कहना आवश्यक अथवा अनिवार्य ही है, तो—

"नंद जसुदा औ गाय, गोप, गोपिका की कछू,
बात बृषभान-भौन हूँ की जनि कीजियौ।
(कहै 'रतनाकर' कहति सब हा हा खाइ,)
ह्याँ के परिपंचनि सौं रंच न पसीजियौ)

क्योंकि ऐसा करने से कृष्ण के—

आँसु भरि ऐहै औ उदास मुख ह्वै हैं हाय!
(जो हम नहीं चाहतीं) इसलिए—
ब्रज-दुख-त्रास की न तातैं साँस लीजियौ।

तो फिर करना क्या? अच्छा, करना बस यही कि—

"नाम कौं बताइ औ जताइ गाम ऊधौ! बस,
स्याम सौं हमारी राम-राम कहि दीजियौ।"

यहाँ 'राम-राम' पद कैसा व्यञ्जक है। इसमें वीप्सा अलंकार नहीं, क्योंकि यह शब्द पुनरुक्ति से प्रणामवाची एक विशेष शब्द-युग्म बन जाता है तथा यह भी व्यञ्जित करता है कि वियोग-व्याकुल गोपियों के जीवनावसान की वह घड़ी निकट आ गई है जब राम-राम ही कहना उचित होता है। यह राम-राम अन्तिम प्रणाम का भाव भी झलकाता है। वस्तुतः दोनों ही छन्द अप्रतिम हैं।

कहीं-कहीं 'रत्नाकर' जी ने बिहारी आदि प्राचीन कवियों की भाति वियोग-ताप का उत्कर्ष अत्युक्ति के साथ चिट्ठी लिखते समय दिखलाया है—

"सूखि जाति स्याही लेखिनी कैं नैंकु डंक लागैं,
अंक लगैं कागद बररि बरि जात है।" (छन्द नं० ९९)

उद्धव के चलते समय उनके पीछे-पीछे भक्ति और प्रेम के वश में होकर, भावनाओं की प्रबल प्रेरणा से बस ब्रज के गोप-गोपी ही नहीं चलने लगते, वरन्

"उद्धव कै चलत चलावत चली यौं चल,
अचल चले और अचले हू भए चल से।"

उद्धव चल तो देते हैं परन्तु कुञ्ज, कूल और कालिन्दी की रोदनमयी दशा को देख-देखकर उनकी जो दशा होती है उसका कैसा मर्मस्पर्शी और हृदय-द्रावक चित्रण छन्द नं० १०२ और १०३ में किया गया है।

हृदय तो नहीं चाहता कि हम किसी छन्द-रत्न की प्रतिभा बिना परखे ही छोड़ दें किन्तु स्थानाभाव हमें बार-बार बाध्य करता है। अस्तु, अब हम आगे बढ़ते हैं।

अलंकार—यह तो सभी जानते हैं कि अलंकारों से भाषा चमक उठती है और फिर काव्य भी चमक उठता है। हाँ, अलंकारों का उपयोग किया जाना चाहिए, काव्यमर्मज्ञता, कला-कुशलता और पाण्डित्य-प्रतिभा के साथ

स्वाभाविक भावोत्कर्ष, भावानुभूति की व्यञ्जना और रसोद्रेक के ही लिए, न कि अलंकारों के उदाहरण-मात्र के लिए। हमारा तो यही विचार है कि अलंकारों के सदुपयोग में 'रत्नाकर' जी को इस काव्य में सर्वथा सराहनीय सफलता मिली है। यदि हम पूर्ण विवेचन के साथ पर्याप्त विस्तार से इस विषय पर प्रकाश डालें तो इस भूमिका का कलेवर बहुत बढ़ जाय, इसलिए स्थाली-पुलाकन्याय का ही आश्रय लेना हम यहाँ समीचीन समझते हैं और अपने रसज्ञ पाठकों के लिए केवल दो ही चार उदाहरण यहाँ उपस्थित करते हैं।

प्रायः लोग यह कहा करते हैं कि ब्रजभाषा के कवि अनुप्रास और यमक आदि अलंकारों के पीछे पड़कर भाव और रस की हत्या कर देते हैं। कहीं-कहीं तो उनका यह कहना किसी-किसी अंश में कुछ ठीक भी उतरता है और इसे हम भी मानते हैं, किन्तु साथ ही यह भी कहते हैं कि ब्रज-भाषा के

जितने भी उच्च कोटि के सिद्धहस्त कवि हैं, उनमें यह बात शायद ही कहीं पाई जाती हो। अनुप्रासादि उनके काव्य में सर्वथा स्वाभाविकता और सुन्दरता के साथ आते हुए उनकी भाषा को चमत्कृत ही बनाते हैं। इनके कारण उनकी भाषा में किसी प्रकार की कृत्रिमता नहीं आने पाती, वरन् ऐसा जान पड़ता हैं कि उनकी वह सानुप्रासिक भाषा उनके हृदय से उसी प्रकार सजी-सजाई स्वभावतः तथा स्वतः निकलती है। वे अनुप्रासों के लिए दीन होकर कोष के द्वार पर शब्द-रत्न नहीं माँगते फिरते। भाषा पर उनका इतना अच्छा अधिकार हो जाता है कि बस—

"वाग् वश्यैवानुवर्तते"—वाणी उनके वश में होकर पीछे-पीछे चलती है और उनकी इच्छा तथा कल्पना से उत्पन्न होनेवाले भावों को परिपुष्ट और उत्कृष्ट करती हुई व्यक्त करती है। भाषा उनके लिए होती है,

वे भाषा के लिए नहीं होते। यह बात ठीक 'रत्नाकर' जी में भी पाई जाती है।

शब्दालंकारों की कृत्रिमता तो वहीं प्रकट होती है, जहाँ अलंकृत शब्दों की ऐसी योजना की जाती है कि उसमें से शब्दों को हम यथारुचि भाव को बिना बिगाड़े हुए भी निकाल सकते हैं, किन्तु जहाँ ऐसा नहीं होता वहाँ हम कह सकते हैं कि शब्दालंकारों का उपयोग नितांत स्वाभाविक, सार्थक तथा भाव परिपोषक है। यही बात इस काव्य में पाई जाती है।

जो लोग रीति-ग्रन्थ लिखते हैं और शब्दालंकारों को स्पष्ट करने के लिए उदाहरणात्मक छन्द रचते हैं, उनमें कृत्रिमता अवश्य ही पाई जाती है, और वह वहाँ क्षम्य भी है, क्योंकि वहाँ पर केवल काव्य-कला कौशल के ही प्रकाशन का उद्देश्य प्रधान होता है। प्रस्तुत काव्य की रचना इस प्रकार की नहीं है। यह तो रस और भाव-प्रधान काव्य है, इसीलिए इसमें छेक, वृत्ति, लाट,

यमक, वीप्सा आदि शब्दालंकार बड़े ही स्वाभाविक तथा भाव-परिपोषक होकर सार्थक रूप से उपयुक्त स्थानों पर ही आये हैं। इन अलंकारों से अलंकृत शब्द या पद इतने आवश्यक, अनिवार्य्य और उपयुक्त भावपूर्ण हैं कि उनको किसी भी प्रकार निकाला नहीं जा सकता अथवा उसके स्थान पर दूसरे शब्दों का प्रयोग नहीं किया जा सकता, क्योंकि ऐसा करने से भाषा और भाव दोनों ही को गहरी क्षति पहुँच सकती है। चूँकि इसी विचार से शब्दालंकारों का उपयोग यहाँ हुआ है इसीलिए उनका प्रयोग-प्राचुर्य्य और अनावश्यक संयोजन नहीं होने पाया। फिर भी उक्त शब्दालंकारों का सदुपयोग इस काव्य में बहुत ही सराहनीय रूप से किया गया है। ऐसे स्थान भी हैं जहाँ अनुप्रासादि का प्राचुर्य्य भी पाया जाता है किन्तु वहाँ भी स्वाभाविकता, सार्थकता और उपयुक्तता नहीं जाने पाई।

चूँकि अनुप्रासों के उदाहरणार्थ रचना नहीं की गई इसीलिए किसी विशेष छन्द में कोई विशेष अनुप्रास नहीं पाया जाता, वरन् प्रायः प्रत्येक छन्द में शब्दालंकार संसृष्टि की ही शालिमा विशेष मिलती है। विशेष चातुर्य्य-चमत्कार और कला-कौशल-पूर्ण पांडित्य यहाँ उन स्थानों पर पाया जाता है जहाँ श्लेष, वीप्सा आदि का उपयोग किया गया है। हमारी समझ में इन शब्दालंकारों का सदुपयोग जितना अच्छा यहाँ प्राप्त होता है उतना कदाचित् बहुत ही कम काव्यों में देखा जाता है।

पदावृत्तिमूलक वीप्सा* (जिसमें एक वाक्य की आवृत्ति की जाती है) का कितना सुन्दर उपयोग छन्द नम्बर २६, ६०, ९८ में मिलता है।

---

*देखो अलंकार-पीयूष पूर्वार्द्ध, पृष्ठ २३७।

इनमें से दो स्थानों में तो हम कह सकते हैं कि वीप्सा एक विचित्र ढंग से रक्खी गई है, क्योंकि वहाँ एक ही वाक्य की आवृत्ति यह दिखलाने के लिए की गई है कि भिन्न-भिन्न व्यक्ति उसी वाक्य का प्रयोग कर रहे हैं न कि एक ही व्यक्ति, जैसा प्रायः वीप्सा में देखा जाता है। यह अवश्य है कि इससे सुनने वाले पर वैसा ही प्रभाव पड़ता है जैसा एक व्यक्ति के द्वारा वीप्सार्थ में की गई आवृत्ति का पड़ा करता है। शब्द-गत वीप्सा के तो अनेकों उदाहरण यहाँ पाये जाते हैं। इसी प्रकार पुनरुक्ति प्रकाश भी कई स्थलों पर अपने अच्छे रूप में मिलता है।

श्लेष के लिए, जैसा हम पहले लिख चुके हैं, हमारे रसज्ञ पाठक यहाँ षट् ऋतुवर्णन के छः कवित्त देख सकते हैं। इन सबसे श्लेष से भाव-व्यञ्जना का बहुत बड़ा काम लिया गया है और इसीलिए वे कवित्त चमक उठे हैं।

छन्द नं० ४५ में अनंग शब्द को श्लिष्ट रूप में लेकर अंग-रहित अर्थात् ब्रह्म और मदन दोनों पर चरितार्थ करते हुए गोपियों के द्वारा उद्धवोपदिष्ट अंगहीन ब्रह्म की आराधना का कैसा मञ्जुल, भाव-व्यञ्जक तथा उपहास-मूलक कथन कराया गया है। गोपियाँ कहती हैं—

"एक ही अनंग साधि साध सब पूरीं अब,
और अंग रहित अराधि करिहैं कहा।"

बड़ी ही सुन्दर युक्ति है और बड़ा ही सुन्दर तथा प्रभावशाली कथन-चातुर्य्य है।

कहीं कहीं तो 'रत्नाकर' जी ने अपने नाम को भी श्लिष्ट रूप में रक्खा है और ऐसा करते हुए भाव को भी उत्कृष्ट कर दिया है, देखो छन्द नं० १५, ३८, ४२, ६८।

इसी प्रकार पाठक और भी देख सकते हैं। हमारा तो यही विचार है कि 'रत्नाकर' जी को शब्दालंकारों में अप्रतिम सफलता मिली है।

अर्थालंकारों के उपयोग में तो 'रत्नाकर' जी ने बड़े-बड़े कमाल किये हैं; उपमा, रूपक आदि अलंकारों का तो कहना ही क्या है, उन साधारण अलंकारों में भी ऐसी जान डाल दी है और उनका ऐसे स्वाभाविक, सार्थक तथा समीचीन रूप से प्रयोग किया है जैसा कदाचित् और किसी भी कवि ने नहीं किया।

लोकोक्ति अलंकार का प्रयोग प्रायः बहुत ही कम कवियों ने किया है और जिन्होंने किया भी है उन्होंने बहुत ही साधारण रूप में किया है। 'रत्नाकर,' जी ने लोकोक्ति का उपयोग बड़ी ही चारुता से करते हुए अपने कवित्त को तो उत्कृष्ट बनाया ही है, कहीं-कहीं लोकोक्तियों को भी उत्कृष्ट कर दिया है। छन्द नं० १६ की "दिपत दिवाकर कौं दीपक दिखावैं कहा" इस

लोकोक्ति को हम 'परिष्कृता लोकोक्ति' कह सकते हैं, क्योंकि इसका साधारण रूप है 'सूर्य को दीपक दिखाना' इसी को परिष्कृत करके यहाँ रक्खा गया है (देखो अलंकार-पीयूष उत्तरार्द्ध, पृष्ठ ६०)। इसी प्रकार छन्द नं० ७८ में देखिए।

लोकोक्तियों के अतिरिक्त 'रत्नाकर' जी ने मुहावरों का भी ऐसा सुन्दर प्रयोग किया है जैसा कदाचित् अन्य कोई भी कवि नहीं कर पाया। पाठक स्वतः देख सकते हैं।

जैसा हम शब्दालंकारों के विषय में कह चुके हैं वैसा ही यहाँ अर्थालंकारों के सम्बन्ध में भी कहा जा सकता है; अर्थात् किसी विशेष कवित्त में किसी विशेष अर्थालंकारों का ही प्रयोग नहीं किया गया, वरन् प्रायः संकर और संसृष्टि के ही रूप में एक-एक छन्द में कई अर्थालंकार यहाँ दिखाई पड़ते हैं।

रूपक, विरोधाभास, उपमा आदि अलंकारों का प्राधान्य अवश्य पाया

जाता है, क्योंकि यही ऐसे अलंकार हैं जिसे भाव को उत्कर्ष और रस को सहायता मिलती है। समूर्त अथवा चित्रोपम अलंकारों को विशेष रूप से लिया गया है, क्योंकि इनसे काव्य में और ही शोभा आ जाती है। इसी तरह षट्ऋतु वर्णन में कई-कई अलंकार बड़ी चातुरता से लाये गये हैं और इसीलिए प्रत्येक कवित्त की सुन्दरता बढ़ गई है। उदाहरणार्थ लीजिए छन्द नं० ८९, इसमें सांग रूपक, श्लेष और विरोधाभास तीनों का सुन्दर सामंजस्य है। साथ ही सुन्दर भाव-व्यंजना की भी मार्मिक पुट है। इसी प्रकार अन्य कवित्त में हमारे सुयोग्य पाठक अलंकारों की चारुता देख सकते हैं।

वर्ण-मैत्री एवं शब्द मैत्री—यहीं पर हम संक्षेप में रचना-सम्बन्धी उन दो गुणों को **भी** दिखला देना आवश्यक समझते हैं जिनका होना सत्काव्य के लिए अनिवार्य है। ये दोनों गुण जब तक कविता में नहीं आते तब तक

उसमें यथोचित सुन्दरता भी नहीं आती । आज-कल देखा जाता है कि कवि लोग इसकी ओर ध्यान ही नहीं दिया करते, जिसका फल यह होता है कि उनका काव्य प्रायः शिथिल, श्रुतिकटु और शब्द-साम्य-रहित हो जाता है। सत्काव्य रचना के लिए वर्ण-मैत्री और शब्द मैत्री दोनों ही की बहुत आवश्यकता है। कह सकते हैं कि ये दोनों शब्दों और वर्णों को तौलने और उनमें समानता दिखलाने वाले तराजू के पल्ले हैं। इन्हीं पर रखकर कवि शब्दों और वर्णों को तौलता और उनका परिणाम देखकर उन्हें चुनता है। यह तो स्पष्ट ही है कि समान मात्रा और परिणामवाले वर्णों और शब्दों के सुव्यवस्थित संगुंफन से ही पदावली रुचिर और रोचक होती है। यदि एक शब्द या वर्ण भारी हों और उसके समीपवर्ती दूसरे शब्द या वर्ण हल्के हों, तो इस प्रकार जो पदावली बनेगी, वह निश्चय ही खटकनेवाली और अरुचिकर होगी।

आवृत्ति-मूलक शब्दालंकार उक्त दोनों गुणों के सहायक या फलरूप में लिये जा सकते हैं। इनके कारण इन दोनों गुणों को उत्कर्ष प्राप्त होता है। कवि-चातुर्य यही है कि इन दोनों गुणों का सुन्दर सामंजस्य काव्य में हो।

यदि हम प्रस्तुत काव्य को इस विचार से देखें तो ज्ञात होगा कि इसमें इन दोनों गुणों से बनी हुई रचना तुला पर तौल-तौलकर शब्द रक्खे गये हैं। शब्द-मैत्री और वर्ण-मैत्री के लिए यह आवश्यक है कि समान कोटि के शब्द और वर्ण एक ही साथ बिठाये जायँ। ऐसा करने से ही पदावली में समता आ सकती है और समता ही उसकी रुचिरता का मुख्य कारण है। यहाँ कोई भी कवित्त ऐसा नहीं मिलता जिसमें यह बात न पाई जाती हो। उदाहरणार्थ पाठकों का ध्यान हम निम्नांकित पदों या कवित्तों की ओर आकर्षित

करते हैं, क्योंकि उनमें उक्त दोनों गुण इतने स्पष्ट रूप में मिलते हैं कि पाठक उन्हें तुरन्त ही पहचान सकते हैं—

छन्द	नं०	२८	पंक्ति	तीसरी	और	चौथी
,,	,,	१५	,,	प्रथम		इत्यादि

कवि-उपनाम

मुक्तक काव्य में हिन्दी के प्रायः सभी कवियों ने अपने नामोपनाम अवश्य रक्खे हैं। संस्कृत के महाकाव्य में यह एक नियम सा रक्खा गया है, कि उसमें कवि अपना सूक्ष्म परिचय अवश्य दे दे। यही बात नाटकों के लिए भी रक्खी गई है। किन्तु मुक्तक काव्य के लिए संस्कृत में न तो कोई ऐसा नियम ही रक्खा गया है और न संस्कृत के मुक्तक-काव्यकारों ने कोई परिपाटी बनाते हुए इसका उपयोग ही किया है। हिन्दी में यह प्रथा बहुत प्राचीन

समय से (भक्ति-काल के प्रारम्भ से) बराबर चली आई है और प्रायः सभी कवि इसके अनुसार अपने नामोपनाम अपनी मुक्तक-रचनाओं में अवश्य देते आये हैं। *

'रत्नाकर' जी ने भी इस परम्परागत परिपाटी का अपने इस काव्य में पालन किया है और प्रत्येक छन्द की द्वितीय पंक्ति में "कहै रतनाकर" अवश्य रक्खा हैं किन्तु छन्द नं० ६, १४, २३, ३४, ४७, ७४, ८५, ८७, ९४ इसके अपवाद हैं अर्थात् इन छन्दों में कवि ने अपना उपनाम कहीं भी नहीं दिया। इसका कारण यही है कि इन छन्दों में भावाधिक्य के कारण नहीं भी इतना स्थान न बचता था कि कवि अपने "कहै रतनाकर" पद को

* देखो हमारा 'मुक्तक काव्य में कवियों के नामोपनाम' शीर्षक लेख—माधुरी, लखनऊ, संवत् १९८७।

सरलता से रख सकता। इससे ज्ञात होता है कि कवि अपना नाम केवल नहीं पर देना चाहता है जहाँ उसे कुछ स्थान भावसूचक शब्दावली के अतिरिक्त बचा हुआ मिलता है।

कुछ स्थल ऐसे भी हैं जहाँ कवि ने अपने उपनाम को श्लिष्ट मानकर इस प्रकार रक्खा है कि उससे उसके भाव को भी सहायता मिलती है और नाम भी आ जाता है। जैसे छन्द नं० १०, ११, १५, १७, ३८, ४२, ५३, ६८।

शेष सब छन्दों की द्वितीय पंक्ति में ही, जैसा लिखा गया है, पाठकों को "कहै रतनाकर" अवश्य मिलेगा, किन्तु एक प्रकार से निरर्थक अथवा पाद पूर्ति ही के रूप में। हाँ, इसका यह तात्पर्य अवश्य लिया जा सकता है और लिया भी गया है कि छन्द में नाम इसलिए अवश्य रखना चाहिए जिससे कोई दूसरा व्यक्ति उसे अपना न कह सके और उसमें कवि की छाप सदा के लिए लगी रहे।

रमाशंकर शुक्ल "रसाल" एम० ए०

उद्धव
शतक

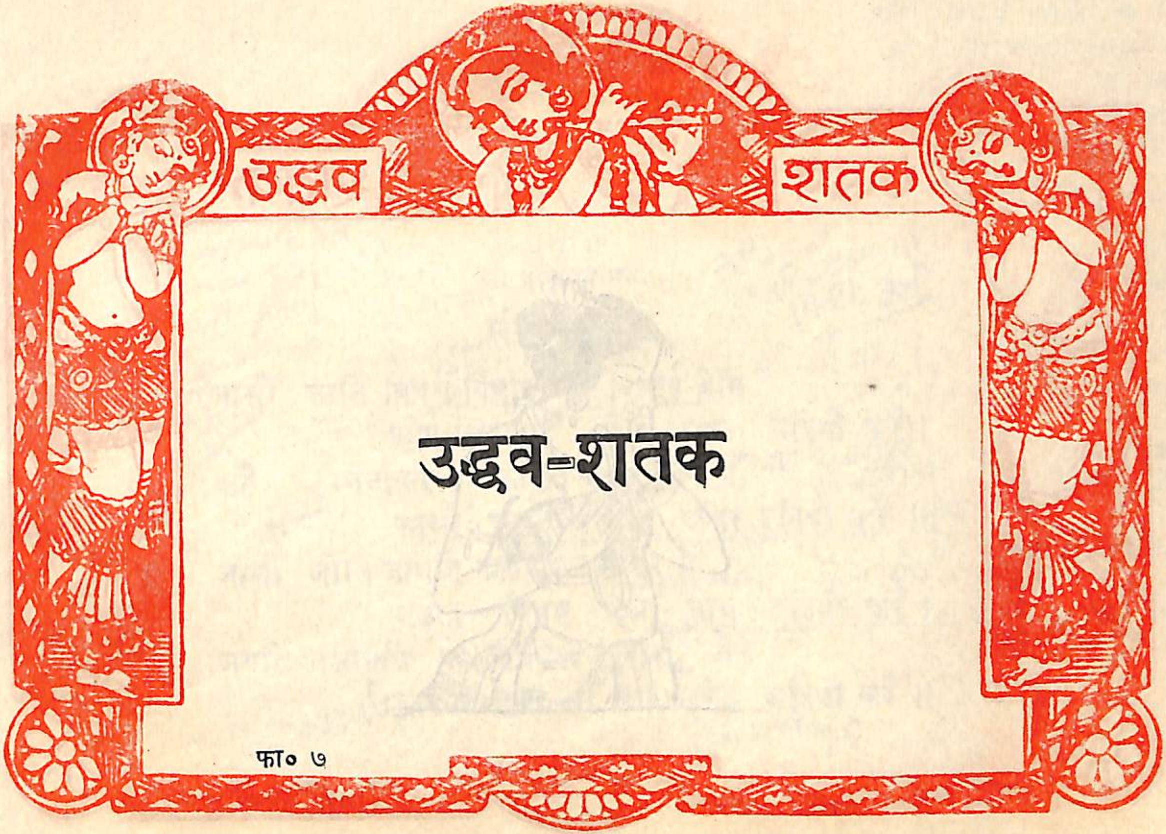

उद्धव-शतक

फा० ७

उद्धव
शतक

उद्धव शतक

॥ ओं ॥

श्री गणेशाय नमः

मंगलाचरण

जासौँ जाति बिषय-बिषाद की बिवाई बेगि
चोप-चिकनाई चित चारु गहिबौ करै।
कहै रतनाकर कबित्त-बर-व्यंजन मैँ
जासौँ स्वाद सौगुनौ रुचिर रहिबौ करै ॥
जासौँ जोति जागति अनूप मन-मंदिर मैँ
जड़ता - बिषम - तम - तोम - दहिबौ करै।
जयति जसोमति के लाड़िले गुपाल, जन
रावरी कृपा सौँ सो सनेह लहिबौ करै ॥

उद्धव
शतक

श्री उद्धव को मथुरा से ब्रज भेजते समय के कवित्त

उद्धव
शतक

उद्धव शतक

न्हात जमुना मैं जलजात एक देख्यौ जात
जाकौ अध ऊरध अधिक मुरझायौ है।
कहै रतनाकर उमहि गहि स्याम ताहि
बास-बासना सौं नैं कु नासिका लगायौ है॥
त्यौं हीं कछु घूमि झूमि बेसुध भए कै हाय
पाय परे उखरि अभाय मुख छायौ है।
पाए घरी द्वैक मैं जगाइ ल्याइ ऊधौ तीर
राधा-नाम कीर जब औचक सुनायौ है॥

उद्धव शतक

आए भुज-बंध दए ऊधव-सखा कैँ कंध
डग-मग पाय मग धरत धराए हैँ ।
कहै रतनाकर न बूझैँ कछु बोलत औ
खोलत न नैन हूँ अचैन चित छाए हैँ ।।
पाइ बहे कंज मैँ सुगंध राधिका को मंजु
ध्याए कदली-बन मतंग लौं मताए हैँ ।
कान्ह गए जमुना नहान पै नए सिर सौँ
नीकैँ तहाँ नेह की नदी मैँ न्हाइ आए हैँ ।।

उद्धव शतक

देखि दूरि ही तैं दौरि पौरि लगि भेंटि ल्याइ
आसन दै साँसनि समेटि सकुचानि तैं ।
कहै रतनाकर यौं गुनन गुबिंद लागे
जौलौं कछू भूले से भ्रमे से अकुलानि तैं ॥
कहा कहैं ऊधौ सौं कहैं हूँ तौ कहाँ लौं कहैं
कैसें कहैं, कहैं पुनि कौन सी उठानि तैं ।
तौलौं अधिकाई तैं उमगि कंठ आइ भिंचि
नीर ह्वै बहन लागी बात अँखियानि तैं ॥

उद्धव शतक

विरह-बिथा की कथा अथक अथाह महा
कहत बनै न जो प्रबीन सुकबीनि सौं ।
कहै रतनाकर बुझावन लगे ज्यौं कान्ह
ऊधौ कौं कहन-हेत ब्रज-जुवतीनि सौं ॥
गहबरि आयौ गरौ भभरि अचानक त्यौं
प्रेम पर्‌यौ चपल चुचाइ पुतरीनि सौं ।
नैंकु कही बैननि, अनेक कही नैननि सौं,
रही-सही सोऊ कहि दीनी हिचकीनि सौं ॥

उद्धव शतक

नंद औ जसोमति के प्रेम-पगे पालन की
लाड़-भरे लालन की लालच लगावती ।
कहै रतनाकर सुधाकर-प्रभा सौं मढ़ी
मंजु मृगनैनिनि के गुन-गन गावती ॥
जमुना-कछारनि की रंग-रस-रारनि की
बिपिन-बिहारनि की हौंस हुमसावती ।
सुधि ब्रज-बासिनि दिवैया-सुख-रासिनि की
ऊधौ नित हमकौं बुलावन कौं आवती ॥

उद्धव शतक

चलत न चार्‌यौ भाँति कोटिनि बिचार्‌यौ तऊ
दाबि दाबि हार्‌यौ पै न टार्‌यौ टसकत है ।
परम गहीली बसुदेव-देवकी की मिली
चाह-चिमटी हूँ सौं न खैंचौ खसकत है ॥
कढ़त न क्यौं हूँ हाय बिथके उपाय सबै
धीर-आक-छीर हूँ न धारैं धसकत है ।
ऊधौ ब्रज-बास के बिलासनि को ध्यान धँस्यौ
निसि-दिन काँटे लौं करेजैं कसकत है ॥

उद्धव शतक

रूप-रस पीवत अघात ना हुते जो तब
सोई अब आँस ह्वै उबरि गिरिबौ करैं ।
कहै रतनाकर जुड़ात हुते देखैं जिन्हैं
याद किएँ तिनकौं अँवाँ सौं घिरबौ करैं ॥
दिननि के फेर सौं भयौ है हेर-फेर ऐसौ
जाकौं हेर फेरि हेरिबोई हिरिबौ करैं ।
फिरत हुते जु जिन कुंजन मैं आठौ जाम
नैननि मैं अब सोई कुंज फिरिबौ करैं ॥

उद्धव शतक

गोकुल की गैल-गैल-गैल-गैल ग्वालिन की
गोरस कैं काज, लाज-बस के बहाइबौ।
कहै रतनाकर रिझाइबौ नवेलिनि कौं
गाइबौ गवाइबौ औ नाचिबौ नचाइबौ।
कीबौ स्रमहार मनुहार कै बिबिध विधि
मोहिनी मृदुल मंजु बाँसुरी बजाइबौ।
ऊधौ सुख-संपति-समाज ब्रज-मंडल के
भूलैं हूँ न भूलैं, भूलैं हमकौं भुलाइबौ॥

उद्धव शतक

मोर के पखौवनि कौ मुकुट छबीलौ छोरि
क्रीट मनि-मंडित धराइ करिहैं कहा।
कहै रतनाकर त्यौं माखन-सनेही बिनु
षट-रस ब्यंजन चबाइ करिहैं कहा।।
गोपी-ग्वाल बालनि कौं झौंकि बिरहानल मैं
हरि सुर-बृंद की बलाइ करिहैं कहा।
प्यारौ नाम गोविंद गुपाल को बिहाइ हाय
ठाकुर त्रिलोक के कहाइ करिहैं कहा।।

कहत गुपाल माल मंजु मनि-पुंजनि की
गुंजनि की माल की मिसाल छबि छावै ना ।
कहै रतनाकर रतन-मैं किरीट अच्छ
मोर-पच्छ-अच्छ लच्छ-अंसहू सु-भावै ना ।।
जसुमति मैया की मलैया अरु माखन कौ
काम-धेनु-गोरस हूँ गूढ़ गुन पावै ना ।
गोकुल की रज के कनूका औ तिनूका सम
संपति त्रिलोक की बिलोकन मैं आवै ना ।।

उद्धव शतक

राधा-मुख-मंजुल-सुधाकर के ध्यान ही सौं
प्रेम-रतनाकर हियैं यौं उमगत है ।
त्यौं ही बिरहातप प्रचंड सौं उमंडि अति
ऊरध उसास कौ झकोर यौं जगत है ॥
केवट विचार कौ बिचारौ पचि हारि जात
होत गुन-पाल ततकाल नभ-गात है ।
करत गँभीर धीर-लंगर न काज कछू
मन कौ जहाज डगि डूबन लगत है ॥

उद्धव शतक

सील-सनी सुरुचि सु-बात चलै पूरब की
औरै ओप उमगी दृगनि मिदुराने तैं ।
कहै रतनाकर अचानक चमक उठी
उर घनश्याम कैं अधीर अकुलाने तैं ॥
आसाछन्न दुरदिन दीस्यौ सुरपुर माहिँ
ब्रज मैं सुदिन बारि-बृंद हरियाने तैं ।
नीर कौ प्रबाह कान्ह-नैननि कैं तीर बाह्यौ
धीर बाह्यौ ऊधौ-उर अचल रसाने तैं ॥

उद्धव शतक

प्रेम-भरी कातरता कान्ह की प्रगट होत
ऊधव अवाइ रहे ज्ञान-ध्यान सरके।
कहै रतनाकर धरा कौ धीर धूरि भयौ
भूरि-भीति भारनि फनिंद-फन करके॥
सुर सुर-राज सुद्ध-स्वारथ-सुभाव-सने
संसय समाए धाए धाम बिधि हर के।
आई फिरि ओप ठाम-ठाम ब्रज-गामनि के
बिरहिनि बामनि के बाम अंग फर के॥

उद्धव शतक

हेत-खेत माहिँ खोदि खाईं सुद्धस्वारथ की
प्रेम-तृन गोपि राख्यौ तापै गमनौ नहीँ ।
करनी प्रतीत-काज करनी बनावट की
राखी ताहि हेरि हियँ हौँसनि सनौ नहीँ ॥
घात मैँ लगे हैँ ये बिसासी ब्रजबासी सबै,
इनके अनोखे छल-छंदनि छनौ नहीँ ।
बारनि कितेक तुम्हैँ बारन कितेक करैँ
बारन-उबारन ह्वै बारन बनौ नहीँ ॥

उद्धव शतक

पाँचौ तत्त्व माहिँ एक सत्त्व ही की सत्ता सत्य
याही तत्त्व-ज्ञान कौ महत्त्व स्नुति गायौ है ।
तुम तौ बिबेक रतनाकर कहौ क्यौँ पुनि
भेद पञ्चभौतिक के रूप मैँ रचायौ है ।।
गोपिनि मैँ, आप मैँ, बियोग और सँजोग हूँ मैँ
एकै भाव चाहिए सचोप ठहरायौ है ।
आपु ही सौँ आपुकौ मिलाप औ बिछोह कहा
मोह यह मिथ्या सुख-दुख सब ठायौ है ।।

१५

उद्धव शतक

दिपत दिवाकर कौं दीपक दिखावै कहा
तुमसन ज्ञान कहा जानि कहिबौ करैं ॥
कहै रतनाकर पै लौकिक-लगाव मानि
परम अलौकिक की थाह थहिबौ करैं ॥
असत असार या पसार मैं हमारी जान
जन भरमाए सदा ऐसैं रहिबौ करैं ॥
जागत औ पागत अनेक पर पंचनि मैं
जैसैं सपने मैं अपने कौं लहिबौ करैं ॥

उद्धव शतक

हा ! हा ! इन्हैं रोकन कौं टोक न लगावौ तुम
बिसद-बिबेक ज्ञान गौरव-दुलारे ह्वै ।
प्रेम-रतनाकर कहत इमि ऊधव सौं
थहरि करेजौ थामि परम दुखारे ह्वै ॥
सीतल करत नैंकु हीतल हमारौ परि
बिषम-बियोग-ताप-समन पुचारे ह्वै ।
गोपिनि के नैन-नीर ध्यान-नलिका ह्वै धाइ
दृगनि हमारैं आइ छूटत फुहारे ह्वै ॥

उद्धव शतक

प्रेम-नेम निफल निवारि उर-अंतर तैं
ब्रह्म-ज्ञान आनँद-निधान भरि लैहैं हम ।
कहै रतनाकर सुधाकर-मुखीनि-ध्यान
आँसुनि सौं धोइ जोति जोई जरि लैहैं हम ।।

आवो एक बार धारि गोकुल-गली की धूरि
तब इहिं नीति की प्रतीति धरि लैहैं हम ।
मन सौं, करेजे सौं, स्रवन-सिर आँखिनि सौं
ऊधव तिहारी सीख भीख करि लैहैं हम ।।

उद्धव शतक

बात चलैं जिनकी उड़ात धीर धूरि भयौ
ऊधौ मंत्र फूँकन चले हैं तिन्हैं ज्ञानी ह्वै ।
कहै रतनाकर गुपाल के हिये मैं उठी
हूक मूक भायनि की अकह कहानी ह्वै ।।
गहबर कंठ ह्वै न कढ़न सँदेश पायौ
नैन-मग तौलौं आनि बैन अगवानी ह्वै ।
प्राकृत प्रभाव सौं पलट मनमानी पाइ
पानी आज सकल सँवार्‌यौ काज बानी ह्वै ।।

उद्धव शतक

ऊधव कैँ चलत गुपाल उर माहिँ चल
आतुरी मची सो परै कहि न कबीनि सौँ ।
कहै रतनाकर हियौ हूँ चलिबै कौँ संग
लाख अभिलाष लै उमहि बिकलीनि सौँ ॥
आनि हिचकी ह्वै गरैँ बीच सकस्यौई परै
स्वेद ह्वै रस्यौई परै रोम-भझरीनि सौँ ॥
आनन-दुवार तैँ उसाँस ह्वै बढ्यौई परै
आँस ह्वै कढ्यौई परै नैन-खिरकीनि सौँ ॥

उद्धव शतक

श्री उद्धव के मथुरा से ब्रज जाते समय के
मार्ग के कवित्त

उद्धव
शतक

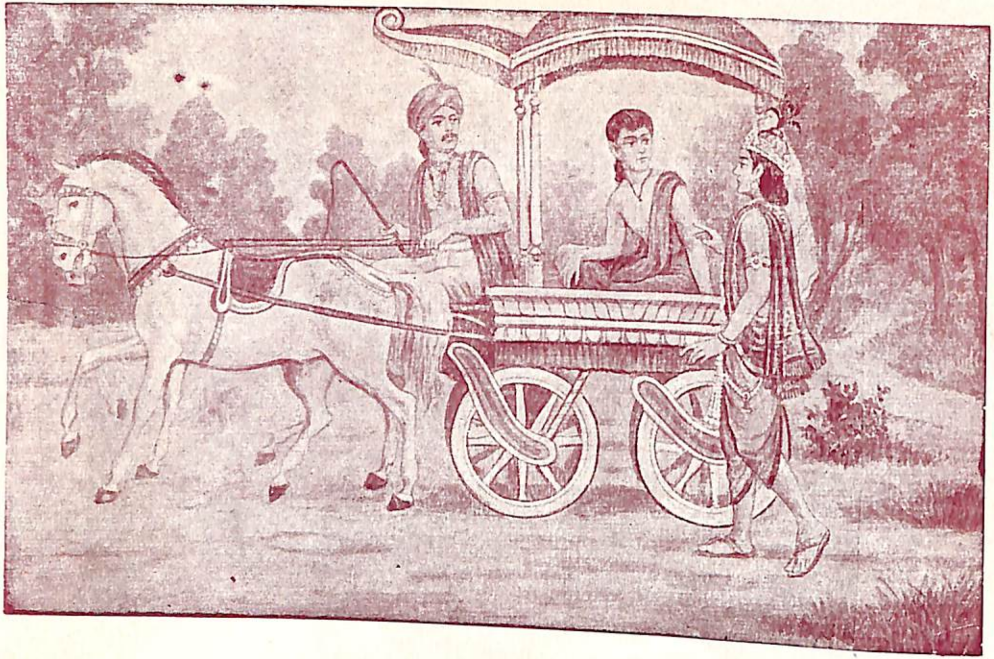

उद्धव शतक

आइ ब्रज-पथ रथ ऊधौ कौं चढ़ाइ कान्ह
अकथ कथानि की ब्यथा सौं अकुलात हैं ।
कहै रतनाकर बुझाइ कछु रोकैं पाय
पुनि कछु ध्याइ उर धाइ उरझात हैं ।।
रससि उसाँसनि सौं बहि-बहि आँसनि सौं
भूरि भरे हिय के हुलास न उरात हैं ।
सीरे तपे विविध सँदेसनि सो बातनि की
घातनि की झोंक में लगेई चले जात हैं ।।

उद्धव शतक

ले कै उपदेस-औ-सँदेश-पन ऊधौ चले
सुजस - कमाइबै, उछाह-उदगार मैँ ।
कहै रतनाकर निहारि कान्ह कातर पै,
आतुर भए यौँ रह्यौ मन न सँभार मैँ ॥
ज्ञान-गठरी की गाँठि छरकि न जान्यो कब
हरै-हरैँ पूँजी सब सरकि कछार मैँ ।
डार मैँ तमालनि की कछु बिरमानी अरु
कछु अरुझानी है करीरनि कै झार मैँ ॥

उद्धव शतक

हरैं-हरैं ज्ञान के गुमान घट जानि लगे
जोग के विधान ध्यान हूँ तैं टरिबै लगे ।
नैननि मैं नीर रोम सकल शरीर छयौ
प्रेम-अद्भुत-सुख सूझि परिबै लगे ॥
गोकुल के गाँव की गली मैं पग पारत ही
भूमि कैं प्रभाव भाव औरै भरिबै लगे ।
ज्ञान-मारतंड के सुखाए मनु मानस कौं
सरस सुहाये घनस्याम करिबै लगे ॥

उद्धव
शतक

उद्धव शतक

श्री उद्धव के ब्रज में पहुँचने के समय के कवित्त

उद्धव
शतक

दुख सुख ग्रीषम औ सिसिर न ब्यापै जिन्हैँ
छापै छाप एकै हिये ब्रह्म-ज्ञान-साने मैँ ।
कहै रतनाकर गँभीर सोई ऊधव कौ
धीर उधरान्यौ आनि ब्रज के सिवाने मैँ ॥
औरै मुख-रंग भयौ सिथिलित अंग भयौ
बैन दबि दंग भयौ गर गरुवाने मैँ ।
पुलकि पसीजि पास चाँपि मुरझाने काँपि
जानैँ कौन बहति बयारि बरसाने मैँ ॥

उद्धव शतक

धाईं धाम-धाम तैं अवाई सुनि ऊधव की
बाम-बाम लाख अभिलाषनि सौं भ्वै रहीं ।
कहै रतनाकर पै बिकल बिलोकि तिन्हैं
सकल करेजौ थामि आपुनपौ ख्वै रहीं ।।
लेखि निज-भाग-लेख रेख तिन आनन की
जानन की ताहि आतुरी सौं मन म्वै रहीं ।
आँस रोकि साँस रोकि पूछन-हुलास रोकि
मूरति निरास की सी आस-भरी ज्वै रहीं ।।

उद्धव शतक

भेजे मनभावन के ऊधव के आवन की
सुधि ब्रज-गावँनि मैं पावन जबै लगीं ।
कहै रतनाकर गुवालिनि की झौरि-झौरि
दौरि-दौरि नंद-पौरि आवन तबै लगीं ॥
उझकि-उझकि पद-कंजनि के पंजनि पै
पेखि-पेखि पाती छाती छोहनि छबै लगीं ।
हमकौं लिख्यौ है कहा, हमकौं लिख्यौ है कहा,
हमकौं लिख्यौ है कहा कहन सबै लगीं ॥

उद्धव शतक

देखि-देखि आतुरी बिकल ब्रज-बारिन की
ऊधव की चातुरी सकल बहि जाति हैं ।
कहै रतनाकर कुसल कहि पूछि रहे
अपर सनेस की न बातैं कहि जाति हैं ॥
मोन रसना ह्वै जोग जदपि जनायौ सबै
तदपि निरास-बासना न गहि जाति हैं ।
साहस कै कछुक उमाहि पूछिबैं कौं ठाहि
चाहि उत गोपिका कराहि रहि जाति हैं ॥

उद्धव शतक

दीन दसा देखि ब्रज-बालनि की ऊधव कौ
गरि गौ गुमान ज्ञान गौरव गुठाने से ।
कहै रतनाकर न आए मुख बैन नैन
नीर भरि ल्याए भए सकुचि सिहाने से ॥
सूखे से स्रमे से सकबके से सके से थके
भूले से भ्रमे से भभरे से भकुवाने से ।
हौले से हले से हूल-हूले से हिये मैं हाय
हारे से हरे से रहे हेरत हिराने से ॥

उद्धव शतक

मोह-तम-रासि नासिबे कौँ स-हुलास चले
[illegible]कौ प्रकास पारि मति रति-माती पर।
कहै रतनाकर पै सुधि उधिरानी सबै
धूरि परी धीर जोग-जुगति सँघाती पर॥
चलत विषम ताती बात ब्रज-बारिनि की
विपति महान परी ज्ञान-बरी बाती पर।
लच्छ दुरे सकल बिलोकत अलच्छ रहैं
एक हाथ पाती एक हाथ दिये छाती पर॥

उद्धव शतक

श्री उद्धव-वचन ब्रजवासियों से

उद्धव शतक

उद्धव शतक

चाहत जौ स्वबस सँजोग स्याम-सुन्दर कौ
जोग के प्रयोग मैं हियौ तौ बिलस्यौ रहै।
कहै रतनाकर सु-अंतर-मुखी है ध्यान
मंजु हिय-कंज-जगी जोति मैं धस्यौ रहै॥
ऐसैं करौं लीन आतमा कौं परमात्मा मैं
जामैं जड़-चेतन-बिलास बिकस्यौ रहै।
मोह-बस जोहत बिछोह जिय जाकौ छोहि
सो तौ सब अंतर-निरंतर बस्यौ रहै॥

उद्धव शतक

पंच तत्त्व मैं जो सच्चिदानँद की सत्ता सो तौ
हम तुम उनमैं समान ही समोई है।
कहै रतनाकर बिभूति पंच-भूत हू की
एक ही सो सकल प्रभूतनि मैं पोई है॥
माया के प्रपंच ही सौं भासत प्रभेद सबै
काँच-फलकनि ज्यौं अनेक एक सोई है।
देखौ भ्रम-पटल उघारि ज्ञान-आँखिनि सौं
कान्ह सब ही मैं कान्ह ही मैं सब कोई है॥

उद्धव शतक

सोई कान्ह सोई तुम सोई सबही हैं लखौ
घट-घट-अंतर अनंत स्यामघन कौं ।
कहै रतनाकर न भेद-भावना सौं भरौ
बारिधि औ बूँद के बिचारि बिछुरन कौं ॥
अबिचल चाहत मिलाप तौ बिलाप त्यागि
जोग-जुगती करि जुगावौ ज्ञान-धन कौं ।
जीव आतमा कौं परमातमा मैं लीन करौ
छीन करौ तन कौं न दीन करौ मन कौं ॥

उद्धव शतक

सुनि सुनि ऊधव की अकह कहानी कान
कोऊ थहरानी, कोऊ थानहिँ थिरानी हैँ ।
कहै रतनाकर रिसानी, बररानी कोऊ
कोऊ बिलखानी, बिकलानी, बिथकानी हैँ ॥
कोऊ सेद-सानी, कोऊ भरि दृग-पानी रहीँ
कोऊ घूमि-घूमि परीँ भूमि मुरझानी हैँ ।
कोऊ स्याम-स्याम कै बहकि बिललानी कोऊ
कोमल करेजौ थामि सहमि सुखानी हैँ ॥

उद्धव शतक

गोपी-वचन उद्धव-प्रति

उद्धव शतक

उद्धव शतक

रस के प्रयोगनि के सुखद सु जोगनि के
जेते उपचार चारु मंजु सुखदाई हैं ।
तिनके चलावन की चरचा चलावै कौन
देत ना सुदर्शन हूँ यौं सुधि सिराई हैं ॥
करत उपाय ना सुभाय लखि नारिनि कौ
भाय क्यौं अनारिनि कौ भरत कन्हाई हैं ।
ह्याँ तौ बिषमज्वर-बियोग की चढ़ाई यह
पाती कौन रोग की पठावत दवाई हैं ॥

उद्धव शतक

ऊधौ कहौ सूधौ सौ सनेस पहिलैं तौ यह
प्यारे परदेस तैं कबै धौं पग पारिहैं ।
कहै रतनाकर तिहारी परि बातनि मैं
मीड़ि हम कबलौं करेजौ मन मारिहैं ॥
लाइ-लाइ पाती छाती कब लौं सिरैहैं हाय
धरि-धरि ध्यान धीर कब लगि धारिहैं ।
बैननि उचारिहैं उराहनौ कबै धौं सबै
स्याम कौ सलोनौ रूप नैननि निहारिहैं ॥

उद्धव शतक

षटरस-ब्यंजन तौ रञ्जन सदा ही करैं
ऊधो नवनीत हूँ स-प्रीति कहूँ पावैं हैं ।
कहै रतनाकर बिरद तौ बखानैं सबै
साँची कहौ केते कहि लालन लड़ावैं हैं ॥
रतन-सिँहासन बिराजि पाकसासन लौं
जग-चहुँ-पासनि तौ सासन चलावैं हैं ।
जाइ जमुना-तट पै कोऊ बट-छाँहिं माहिं
पाँसुरी उमाहि कबौं बाँसुरी बजावैं हैं ॥

४५

उद्धव शतक

कान्ह-दूत कैधौं ब्रह्म-दूत ह्वै पधारे आप
धारे प्रन फेरन को मति ब्रजबारी की ।
कहै रतनाकर पै प्रीति-रीति जानत ना
ठानत अनीति आनि नीति लै अनारी की ॥
मान्यौ हम, कान्ह ब्रह्म एक ही, कह्यौ जो तुम
तौहूँ हमैं भावति ना भावना अन्यारी की ।
जैहै बनि बिगरि न बारिधिता बारिधि की
बूँदता बिलैहै बूँद बिबस बिचारी की ॥

चोप करि चंदन चढ़ायौ जिन अंगनि पै
तिनपै बजाइ तूरि धूरि दरिबौ कहौ।
रस-रतनाकर स-नेह निरवार्‌यौ जाहि
ता कच कौं हाय जटा-जूट बरिबौ कहौ॥
चंद अरबिंद लौं सराह्यौ ब्रजचंद जाहि
ता मुख कौं काकचञ्चवत करिबौ कहौ।
छेदि-छेदि छाती छलनी कै बैन-बानन सौं
तामैं पुनि ताइ धीर-नीर धरिबौ कहौ॥

उद्धव शतक

चिंता-मनि मंजुल पँवारि धूर-धारनि मैं
काँच-मन-मुकुर सुधारि रखिबौ कहौ ।
कहै रतनाकर बियोग-आगि सारन कौं
ऊधौ हाय हमकौं बयारि भखिबौ कहौ ॥
रूप-रस-हीन जाहि निपट निरूपि चुके
ताकौ रूप ध्याइबौ औ रस चखिबौ कहौ ।
एते बड़े बिस्व माहिँ हेरैँ हूँ न पैयै जाहि,
ताहि त्रिकुटी मैँ नैन मूँदि लखिबौ कहौ ॥

आए हौ सिखावन कौं जोग मथुरा तैं तोपै,
ऊधौ ये बियोग के बचन बतरावौ ना ।।
कहै रतनाकर दया करि दरस दीन्यौ
दुख दरिबै कौं, तोपै अधिक बढ़ावौ ना ।।
टूक-टूक ह्वै है मन मुकुर हमारौ हाय
चूकि हूँ कठोर-बैन पाहन चलावौ ना ।
एक मनमोहन तौ बसिकै उजार्‌यौ मोहिँ
हिय मैं अनेक मनमोहन बसावौ ना ।।

उद्धव शतक

चुप रहौ ऊधौ सूधौ पथ मथुरा कौ गहौ
कहौ न कहानी जौ बिबिध कहि आए हौ ।
कहै रतनाकर न बूझिहैं बुझाएँ हम
करत उपाय बृथा भारी भरमाए हौ ॥
सरल स्वभाव मृदु जानि परौ ऊपर तैं
पर उर धाय करि लौंन सौ लगाए हौ ।
रावरी सुधाई मैं भरी है कुटिलाई कूटि
बात की मिठाई मैं लुनाई लाइ ल्याए हौ ॥

उद्धव शतक

नेम ब्रत संजम के पीँजरे परे को जब
लाज-कुल-कानि-प्रतिबंधहिँ निवारि चुकीँ ।
कौन गुन गौरव कौ लंगर लगावै जब
सुधि बुधि ही कौ भार टेक करि टारि चुकीँ ॥
जोग-रतनाकर मैँ साँस घूँटि बूड़ै कौन
ऊधो हम सूधौ यह बानक बिचारि चुकीँ ।
मुक्ति-मुकता कौ मोल माल ही कहा है जब
मोहन लला पै मन-मानिक ही वारि चुकीँ ॥

ल्याए लादि बादि हाँ लगावन हमारे गरैं
हम सब जानी कहौ सुजस-कहानी ना।
कहै रतनाकर गुनाकर गुबिंद हूँ कौं
गुननि अनंत बेधि सिमिटि समानी ना।।
हाथ बिन मोल हूँ बिकी न मग हूँ मैं कहूँ
तापै बटपार-टोल लोल हूँ लुभानी ना।
केती मिली मुकति बधू बर के कूबर मैं
ऊबर भई जो मधुपुर मैं समानी ना।।

हम परतच्छ मै प्रमान अनुमाने नाहि
तुम भ्रम-भौंर मैं भलैं हीं बहिबौ करौ ।
कहै रतनाकर गुबिंद-ध्यान धारैं हम
तुम मनमानौ ससा-सिंग गहिबौ करौ ॥
देखति सो मानति हैं सूधौ न्याव जानति हैं
ऊधौ ! तुम देखि हूँ अदेख रहिबौ करौ ।
लखि ब्रज-भूप-रूप अलख अरूप ब्रह्म
हम न कहैंगी तुम लाख कहिबौ करौ ॥

५३

उद्धव शतक

रंग-रूप-रहित लखात सबही हैं हमैं
वैसो एक और ध्याइ धीर धरिहैं कहा ।
कहै रतनाकर जरी हैं बिरहानल मैं
और अब जोति कौं जगाइ जरिहै कहा ॥
राखौ धरि ऊधौ उतै अलख अरूप ब्रह्म
तासौं काज कठिन हमारे सरिहैं कहा ।
एक ही अनंग साधि साध सब पूरीं अब
और अंग-रहित अराधि करिहैं कहा ॥

उद्धव शतक

कर-बिनु कैसैं गाय दूहिहै हमारी वह
पद-बिनु कैसैं नाचि थिरकि रिझाइहै ।
कहै रतनाकर बदन-बिनु कैसैं चाखि
माखन बजाइ बैनु गोधन गवाइहै ॥
देखि सुनि कैसैं दृग स्रवन बिनाहीं हाय
भोरे ब्रजबासिनि की बिपति बराइहै ।
रावरौ अनूप कोऊ अलख अरूप ब्रह्म
ऊधौ कहौ कौन धौं हमारैं काम आइहै ॥

उद्धव शतक

वे तौ बस बसन रँगावैँ मन रंगत ये
भसम रमावैँ वे ये आपुहीँ भसम हैँ ।
साँस-साँस माहिँ बहु बासर बितावत वे
इनकैँ प्रतेक साँस जात ज्यौँ जनम हैँ ॥
ह्वै कै जग-मुक्ति सौँ बिरक्त मुक्ति चाहत वे
जानत ये भुक्ति मुक्ति दोऊ बिष सम हैँ ।
करिकै बिचार ऊधौ सूधौ मन माहिँ लखौ
जोगी सौँ बियोग-भोग-भोगी कहा कम हैँ ॥

जोग को रमावै औ समाधि को जगावै इहाँ
दुख-सुख साधनि सौं निपट निबेरी हैं ।
कहै रतनाकर न जानैं क्यौं इतै धौं आइ
साँसनि की सासना की बासना बखेरी हैं ॥
हम जमराज की धरावतिं जमा न कछू
सुर-पति-संपतिं की चाहति न ढेरी हैं ।
चेरी हैं न ऊधो ! काहू ब्रह्म के बबा की हम
सूधौ कहे देतिं एक कान्ह की कमेरी हैं ॥

उद्धव शतक

सरग न चाहैं अपबरग न चाहैं सुनौ
भुक्ति-मुक्ति दोऊ सौं बिरक्ति उर आनैं हम।
कहै रतनाकर तिहारे जोग-रोग माहिं
तन मन साँसनि की साँसति प्रमानैं हम ।।
एक ब्रजचंद कृपा-मंद-मुसकानि ही मैं
लोक परलोक कौ अनंद जिय जानैं हम।
जाके या बियोग-दुःख हू सुख मैं ऐसौ कछू
जाहि पाइ ब्रह्म-सुख हू मैं दुख मानैं हम ।।

जग सपनो सौ सब परत दिखाई तुम्हैं
तातैं तुम ऊधौ हमैं सोवत लखात हौ।
कहै रतनाकर सुनै को बात वतसों की
जोई मुँह आवत सो बिबस बयात हौ॥
सोवत मैं जागत लखत अपने कौं जिमि
त्यौं हीं तुम आपहीं सुज्ञानी समुझात हौ।
जोग-जोग कबहूँ न जानैं कहा जोहि जकौ
ब्रह्म-ब्रह्म कबहूँ बहकि बररात हौ॥

ऊधौ यह ज्ञान कौ बखान सब बाद हमैं
सूधौ बाद छाँड़ि बकबादहिँ बढ़ावै कौन ।
कहै रतनाकर बिलाय ब्रह्म काय माहिँ
आपने सौं आपुनौ आपुनौ नसावै कौन ।।
काहू तौ जनम मैं मिलैंगी स्यामसुन्दर कौं
याहू आस प्रानायाम साँस मैं उड़ावै कौन ।
परि कै तिहारी ज्योति ज्वाल की जगाजग मैं
फेरि जग जाइबे की जुगती जरावै कौन ।।

वाही मुख मंजुल की चहतिँ मरीचैँ सदा
हमकौँ तिहारी ब्रह्म-ज्योति करिबौ कहा ।
कहै रतनाकर सुधाकर-उपासिनि कौँ
भानु की प्रभानि कैँ जुहारि जरिबौ कहा ॥
भोगि रहीँ बिरचे बिरंचि के सँजोग सबै
ताके सोग सारन कौं जोग चरिबौ कहा ।
जब ब्रजचंद कौ चकोर चित चारु भयौ
बिरह-चिँगारिनि सौँ फेरि डरिबौ कहा ॥

उद्धव शतक

ऊधौ जम-जातना की बात न चलावौ नैँकु
अब दुख सुख कौ बिबेक करिबौ कहा।
प्रेम-रतनाकर-गँभीर-परे मीननि कौँ
इहि भव-गोपद की भाँति भरिबौ कहा ॥
एकै बार लैहैँ मरि मीच की कृपा सौँ हम
रोकि-रोकि साँस बिनु मीच मरिबौ कहा।
छिन जिन झेली कान्ह-बिरह-बलाय तिन्हैँ
नरक-निकाय की धरक धरिबौ कहा ॥

जोगिनि की भोगिनि की बिकल बियोगिनि की
जग मैं न जागती जमातैं रहि जाइँगी ।
कहै रतनाकर न सुख के रहे जौ दिन
तौ ये दुख-द्वंद की न रातैं रहि जाइँगी ।।
प्रेम-नेम छाड़ि ज्ञान-छेम जो बतावत सो
भीति ही नहीं तौ कहा छातैं रहि जाइँगी ।
घातैं रहि जाइँगी न कान्ह की कृपा तैं इती
ऊधौ कहिबे कौं बस बातैं रहि जाइँगी ।।

उद्धव शतक

कठिन करेजौ जो न करक्यौ बियोग होत
तापर तिहारौ जंत्र मंत्र खँचिहै नहीँ ।
कहै रतनाकर बरी हैं बिरहानल मैं
ब्रह्म की हमारैं जिय जोति जँचिहै नहीँ ।।
ऊधौ ज्ञान-भान की प्रभानि ब्रजचंद बिना
चहकि चकोर चित चोपि नचिहै नहीँ ।
स्याम-रंग-राँचे हिय हम ग्वारिनि कैं
जोग की भगौँही भेष-रेख रँचिहै नहीँ ।।

उद्धव शतक

नैननि के नीर औ उसीर सौं पुलकावलि
जाहि करि सीरौ सीरी बातहि बिलासैं हम।
कहै रतनाकर तपाई बिरहातप की
आवन न देतिँ जामैं बिषम उसासैं हम।।
सोई-मन-मन्दिर तपावन के काज आज
रावरे कहे तैं ब्रह्म-जोति लै प्रकासैं हम।
नंद के कुमार सुकुमार कौं बसाइ यामैं
ऊधौ अब आइ कै बिसास उदबासैं हम।

उद्धव शतक

जोहैं अभिराम स्याम चित की चमक ही मैं
और कहा ब्रह्म की जगाइ जोति जोहैंगी ।
कहै रतनाकर तिहारी बात ही सौं रुकी
साँस की न साँसति कै औरौ अवरौहैंगी ॥
आपुही भई हैं मृगछाला ब्रज-बाला सबै
तिनपै अपर मृगछाला कहा सोहैंगी ।
ऊधौ मुक्ति-माल बृथा मढ़त हमारे गरैं
कान्ह बिना तासौं कहौ काकौ मन मोहैंगी ॥

उद्धव शतक

कीजै ज्ञान भानु कौ प्रकास गिरि-सृंगनि पै
ब्रज मैं तिहारी कला नैंकु खटिहैं नहीं ।
कहै रतनाकर न प्रेम-तरु पैहै सूखि
याकी डार-पात तृन-तूल घटिहैं नहीं ॥
रसना हमारी चारु चातकी बनी है ऊधौ
पी-पी की बिहाइ और रट रटिहैं नहीं ।
लौटि-पौटि बात कौ बवंडर बनावत क्यौं
हिय तैं हमारे घनस्याम हटिहैं नहीं ॥

उद्धव शतक

नैननि के आगैं नित नाचत गुपाल रहैं
ख्याल रहैं सोई जो अनन्य-रसवारे हैं ।
कहै रतनाकर सो भावना भरीयै रहै
जाके चाव भाव रचैं उर मैं अखारे हैं ॥
ब्रह्म हूँ भए पै नारि ऐसियै बनी जौ रहैं
तौ तौ सहैं सीस सबै बैन जो तिहारे हैं ।
यह अभिमान तौ गवैं हैं ना गये हूँ प्रान
हम उनकी हैं वह प्रीतम हमारे हैं ॥

उद्धव शतक

सुनीं गुनीं समझीं तिहारी चतुराई जिती
कान्ह की पढ़ाई कविताई कुबरी की हैं ।
कहै रतनाकर त्रिकाल हू त्रिलोक हू मैं
आनैं अन नैं कु ना त्रिदेव की कही की हैं ॥
कहिहिं प्रतीति प्रीति नीति हूँ त्रिबाचा बाँधि
ऊधौ साँच मन की हिये की अरजी की हैं ।
वै तौ हैं हमारे ही हमारे ही और
हम उनही की उनही की उनही की हैं ॥

नेम व्रत संजम कै आसन अखंड लाइ
साँसनि कौं घूँटिहैं जहाँ लौं गिलि जाइगौ ।
कहै रतनाकर धरैंगी मृगछाला अरु
धूरि हूँ दरैंगी जऊ अंग छिलि जाइगौ ॥
पाँच आँचि हूँ की झार झेलिहैं निहारि जाहि
रावरौ हू कठिन करेजौ हिलि जाइगौ ।
सहिहैं तिहारे कहैं साँसति सबै पै बस
एती कहि देहु कै कन्हैया मिलि जाइगौ ॥

साधि लैहैं जोग के जटिल जे बिधान ऊधौ
बाँधि लैहैं लकनि लपेटि मृगछाला हू ।
कहै रतनाकर सु मेलि लैहैं छार अंग
झेलि लैहैं ललकि घनेरे घाम पाला हू ॥
तुम तौ कहा औ अनकही कहि लीनी सबै
अब जो कहौ तौ कहैं कछु ब्रज-बाला हू ।
ब्रह्म मिलिबै तैं कहा मिलबै बतावौ हमैं
ताकौ फल जब लौं मिलै ना नन्दलाला हू ॥

साधिहैँ समाधि औ अराधिहैँ सबै जो कहौ
आधि-ब्याधि सकल स-साध सही लैहैँ हम ।
कहै रतनाकर पै प्रेम-प्रन-पालन कौ
नेम यह निपट सछेम निरबैहैँ हम ।।
जैहैँ प्रान-पट लै सरूप मनमोहन कौ
तातैँ ब्रह्म रावरे अनूप कौँ मिलैहैँ हम ।
जौपै मिल्यो तौ तौ धाइ चाय सौँ मिलैँगी पर
जौ न मिल्यौ तौ पुनि इहाँ ही लौटि ऐहैँ हम ।।

कान्ह हूँ सौं आन ही बिधान करिबे कौं ब्रह्म
मधुपुरियान की चपल कँखियाँ चहैं ।
कहै रतनाकर हँसैं कै कहौ रोवैं अब
गगन-अथाह-थाह लेन मखियाँ चहैं ॥
अगुन - सगुन - फंद - बन्द निरवारन कौं
धारन कौं न्याय की नुकीली नखियाँ चहैं ।
मोर-पँखियाँ कौ मौर-वारौ चारु चाहन कौं
ऊधौ अँखियाँ चहैं न मोर-पँखियाँ चहैं ॥

ढोँग जात्यौ ढरकि परकि डर सोग जात्यौ
जोग जात्यौ सरकि स-कंप कँखियानि तैँ ।
कहै रतनाकर न लेखते प्रपञ्च ऐँठि
बैठि धरा लेखते कहूँधौं नखियानि तैँ ॥
रहते अदेख नाहिं बेष वह देखत हूँ
देखत हमारी जान मोर पँखियानि तैँ ।
ऊधो ब्रह्म-ज्ञान कौ बखान करते न नैंकु
देख लेते कान्ह जौ हमारी अँखियानि तैँ ॥

चाव सौं चले हौ जोग-चरचा चलाइबै कौं
चपल चितौनि तैं चुचात चित-चाह है ।
कहै रतनाकर पै पार ना बसैहै कछू
हेरत हिरैहै भर्यौ जो उर उछाह है ॥
अंडै लौं टिटेहरी के जैहै जू बिबेक बहि
फेरि लहिबे कौ ताके तनक न राह है ।
यह वह सिंधु नाहिँ सोखि जो अगस्त लियौ
ऊधौ यह गोपिनि के प्रेम कौ प्रवाह है ॥

धरि राखौ ज्ञान गुन गौरव गुमान गोइ
　　　　गोपिन कौं आवत न भावत भड़ंग है।
कहै रतनाकर करत टायँ-टायँ बृथा
　　　　सुनत न कोउ इहाँ यह मुहचंग है ॥
और हूँ उपाय केते सहज सुढङ्ग ऊधौ
　　　　साँस रोकिबै कौं कहा जोग ही कुढङ्ग है।
कुटिल कटारी है अटारी है उतङ्ग अति
　　　　जमुना-तरङ्ग है तिहारौ सतसङ्ग है ॥

उद्धव शतक

प्रथम भुराइ चयि-नाय पै चढ़ाइ नीकै
न्यारो करी कान्ह कुल-कूल हितकारी तैं ।
प्रेम-रतनाकर की तरल तरङ्ग पारि
पलटि पराने पुनि प्रन-पतवारी तैं ॥
और न प्रकार अब पार लहिबै कौं कछु
अटकि रह्यौ है एक आस गुनवारी तैं ।
सोऊ तुम आइ बात विषम चलाइ हाय
काटन चहत जोग-कठिन कुठारी तैं ॥

उद्धव शतक

प्रेम-पाल पलटि उलटि पतवारी-पति
केवट परान्यौ कूब-तूँबरी अधार लै ।
कहै रतनाकर पठायौ तुम्हैं तापै पुनि
लादन कौं जोगु कौ अपार अति भार लै ॥
निरगुन ब्रह्म कहौ रावरौ बनैहै कहा
ऐहै कछु काम हूँ न लङ्गर लगार लै ।
विषम चलावौ ज्ञान-तपन-तपी ना बात
पारी कान्ह तरनी हमारी मँझधार लै ॥

प्रथम भुराइ प्रेम - पाठनि पढ़ाइ उन
तन मन कीन्हैं बिरहागि के तपेला हैं ।
कहै रतनाकर त्यौं आप अब तापै आइ
साँसनि की साँसति के झारत झमेला हैं ॥
ऐसे-ऐसे सुभ उपदेस के दिवैयनि की
ऊधौ ब्रजदेस मैं अपेल रैल-रेला हैं ।
वे तौ भए जोगी जाइ पाइ कूबरी कौ जोग
आप कहैं उनके गुरू हैं किधौं चेला हैं ॥

एते दूरि देसनि सौं सखनि-संदेसनि सौं
लखन चहैं जो दसा दुसह हमारी है ।
कहै रतनाकर पै बिषम बियोग-बिथा
सबद-बिहीन भावना की भाववारी है ॥
आनैं उर अंतर प्रतीति यह तातैं हम
रीति नीति निपट भुजंगनि की न्यारी है ।
आँखिनि तैं एक तौ सुभाव सुनिबै कौ लियौ
काननि तैं एक देखिबै की टेक धारी है ॥

उद्धव शतक

दौनाचल कौं ना यह छटक्यौ कनूका जाहि
　　छाइ छिगुनी पै छेम-छत्र छिति छायौ है।
कहै रतनाकर न कूबर वधू-बर कौ
　　जाहि रंच राँचैं पानि परसि गँवायौ है ॥
यह गरु प्रेमाचल दृढ़-व्रत-धारिनि-कौ
　　जाकैं भार भाव उनहूँ कौं सकुचायौ है।
जानै कहा जानि कै अजान ह्वै सुजान कान्ह
　　ताहि तुम्है बात सौं उड़ावन पठायौ है ॥

सुधि बुधि जाति उड़ी जिनकी उसाँसनि सौं
तिनकौं पठायौ कहा धीर धरि पाती पर ।
कहै रतनाकर त्यौं बिरह - बलाय ढाइ
मुहर लगाइ गए सुख - थिर-थाती पर ॥
और जो कियौ सो कियौ ऊधौ पै न कोऊ बियौ
ऐसी घात घूनी करै जनम-सँघाती पर ।
कूबरी की पीठ तैं उतारि भार भारी तुम्हैं
भेज्यौ ताहि थापन हमारी छीन छाती पर ॥

सुघर सलोने स्यामसुंदर सुजान कान्ह
करुना-निधान के बसीठ बनि आए हौ ।
प्रेम-प्रनधारी गिरधारी को सनेसौ नाहिँ
होत है अँदेश झूठ बोलत बनाए हौ ॥
ज्ञान-गुन गौरव-गुमान-भरे फूले फिरौ
बंचक के काज पै न रंचक बराए हौ ।
रसिक-सिरौमनि कौ नाम बदनाम करौ
मेरी जान ऊधौ कूर-कूबरी-पठाए हौ ॥

कान्ह कूबरी के हिय-हुलसे-सरोजनि तैं
अमल अनन्द-मकरंद जो ढरारै है।
कहै रतनाकर, यौं गोपी उर संचि ताहि
तामैं पुनि आपनौ प्रपञ्च रंच पारै है॥
आइ निरगुन-गुन गाइ ब्रज मैं जो अब
ताको उद्गार ब्रह्मज्ञान-रस गारै है।
मिलि सो तिहारो मधु मधुप हमारैं नेह
देह मैं अछेह बिष बिषम बगारै है॥

सीता असगुन कौं कटाई नाक एक बेरि
सोई करि कूब राधिका पै फेरि फाटी है ।
कहै रतनाकर परेखौ नाहिं याकौ नैंकु
ताकी तौ सदा की यह पाकी परिपाटी है ॥
सोच है यहै कै संग ताके रंगभौन माहिँ
कौन धौं अनोखौ ढङ्ग रचत निराटी है ।
छाँटि देत कूबर कै आँटि देत डाँट काऊ
काटि देत खाट किधौं पाटि देत माटी है ॥

आए कंसराइ के पठाए वे प्रतच्छ तुम
लागत अलच्छ कुबजा के पच्छवारे हौ।
कहै रतनाकर बियोग लाइ लाई उन
तुम जोग बात के बवंडर पसारे हौ ॥
कोऊ अबलानि पै न ढरकि ढरारे होत
मधुपुरवारे सब एके ढार ढारे हौ।
लै गए अक्रूर क्रूर तन तैं छुड़ाइ हाय
ऊधौ तुम मन तैं छुड़ावन पधारे हौ ॥

उपालम्भ का भी संकेत

संख्या के मुहावरों का प्रयोग।

उद्धव शतक

आए हो अठाए वा छतीसे छलिया के इतै
बीस बिसै ऊधौ बीरबावन कलाँच ह्वै ।
कहै रतनाकर प्रपञ्च ना पसारौ गाढ़े
बाढ़े पै रहौगे साढ़े बाइस ही जाँच ह्वै ॥
प्रेम अरु जोग मैं है जोग छठैं-आठैं पर्यौ
एक ह्वै रहैं क्यौं दोऊ हीरा अरु काँच ह्वै ।
तीन गुन पाँच तत्त्व बहकि बतावत सो
जैहै तीन-तेरह तिहारी तीन-पाँच ह्वै ॥

निष्प्रयोजन

उद्धव शतक

कंस के कहे सौं जदुबंस कौ बताइ उन्हौं
तैसैं ही प्रसंसि कुब्जा पै ललचायौ जो ।
कहै रतनाकर न मुष्टिक चनूर आदि
मल्लनि कौ ध्यान आनि हिय कसकायौ जो ।।
नंद जसुदा की सुखमूरि करि धूरि सबै
गोपी ग्वाल गैयनि पै गाज लै गिरायौ जो ।
होते कहूँ क्रूर तौ न जानैं करते धौं कहा
एतौ क्रूर करम अक्रूर ह्वै कमायौ जो ।।

अगर उनका "नाम क्रूर होता" बनाते तो क्या क्या कर्म करते क्योंकि उन्होंने अक्रूर होते हुये भी इतने क्रूर कर्म किये

उद्धव शतक

चाहत निकारत तिन्हैं जो उर-अंतर तैं
ताकौं जोग चाहि जोग-मन्तर तिहारे मैं ।
कहै रतनाकर बिलग करिबे मैं होति
नीति बिपरीत महा कहति पुकारे मैं ॥
तातैं तिन्हैं ल्याइ लाइ हिय तैं हमारे बेगि
सोचियै उपाय फेरि चित्त चेतवारे मैं ।
ज्यौं-ज्यौं बसे जात दूरि-दूरि प्रिय प्रान मूरि
त्यौं-त्यौं धँसे जात मन-मुकुर हमारे मैं ॥

उद्धव शतक

ह्याँ तौ ब्रजजीवन सौ जीवन हमारौ हाय
जानैं कौन जीव लै उहाँ के जन जनमैं ।
कहैं रतनाकर बतावत कछू कौ कछू
ल्यावत न नैं कु हूँ बिबेक निज मन मैं ॥
अच्छिनि उघारि ऊधौ करहु प्रतच्छ लच्छ
इत पसु-पच्छिनि हूँ लाग है लगन मैं ।
कान की न जीहा करैं ब्रह्म की समीहा, सुनौ
पीहा-पीहा रटत पपीहा मधुबन मैं ॥

उद्धव शतक

बाढ्यौ ब्रज पै जो ऋन मधुपुर-बासिनि कौ
तासौँ ना उपाय काहूँ भाय उमहन कौं ।
कहै रतनाकर बिचारत हुतौ हीं हम
कोऊ सुभ जुक्ति तासौँ मुक्त ह्वै रहन कौं ॥
कीन्यौ उपकार दौरि दोउनि अपार ऊधौ
सोई भूरिभार सौं उबारता लहन कौं ।
लै गयौ अक्रूर क्रूर तब सुख-मूर कान्ह
आए तुम आज प्रान-ब्याज उगहन कौं ॥

उद्धव शतक

पुरतीं न जौपै मोर चंद्रिका किरीट काज
जुरती कहा न काँच किरचैं कुभाय की।
कहै रतनाकर न भावते हमारे नैन
तौ न कहा पावते कहूँधौं ठाँय पाय को॥
मान्यौ हम मान कै न मानती मनाएँ बेगि
कीरति-कुमारी सुकुमारी चित-चाय की।
याही सोच माहिँ हम होतिँ दूबरी कै कहा
कूबरी हू होती ना पतोहू नन्दराय की॥

उद्धव-शतक

हरि-तन-पानिप के भाजन दृगंचल तैं
उमगि तपन तैं तपाक करि धारै ना ।
कहै रतनाकर त्रिलोक-ओक-मंडल मैं
बेगि ब्रह्मद्रव उपद्रव मचावै ना ॥
हर कौं समेत हर-गिरि के गुमान गारि
पल मैं पतालपुर पैठन पठावै ना ।
फैले बरसाने मैं न रावरी कहानी यह
बानी कहूँ राधे आधे कान सुनि पावै ना ॥

उद्धव शतक

आतुर न होहु ऊधौ आवति दिवारी अबै
वैसियै पुरंदर-कृपा जौ लहि जाइगी ।
होत नर ब्रह्म ब्रह्म-ज्ञान सौं बतावत जो
कछु इहिँ, नीति की प्रतीति गहि जाइगी ।।
गिरिवर धारी जौ उबारि ब्रज लीन्यौ बलि
तौ तौ भाँति काहू यह बात रहि जाइगी ।
नातरु हमारी भारी बिरह-बलाय-संग
सारी ब्रह्म-ज्ञानता तिहारी बहि जाइगी ।।

उद्धव शतक

आवत दीवारी बिलखाइ ब्रज-वारी कहैं
अबकै हमारैं गाँव गोधन पुजैहै को।
कहै रतनाकर बिबिध पकवान चाहि
चाह सौं सराहि चख चंचल चलैहै को ॥
निपट निहोरि जोरि हाथ निज साथ ऊधौ
दमकति दिव्य दीपमालिका दिखैहै को ।
कूबरी के कूबर तैं उबरि न पावैं कान्ह
इंद्र-कोप-लोपक गुबर्धन उठैहै को ॥

९५

उद्धव शतक

बिकसित बिपिन बसंतिकावली कौ रंग
लखियत गोपिनि के अंग पियराने मैं।
बौरै बृंद लसत रसाल-बर बारिनि के
पिक की पुकार है चबाव उमगाने मैं॥
होत पतझार झार तरुनि-समूहनि कौ
बैहरि बतास लै उसास अधिकाने मैं।
काम-बिधि बाम की कला मैं मीन-मेष कहा
ऊधौ नित बसत बसंत बरसाने मैं॥

उद्धव शतक

ठाम-ठाम जीवन-बिहीन दीन दीसैं सबै
चलति चबाई-बात तापत घनी रहै ।
कहै रतनाकर न चैन दिन-रैन परै
सूखी पत-छीन भई तरुनि अनी रहै ।
जार्‌यौ अंग अब तौ बिधाता है इहाँ कौ भयौ
तातैं ताहि जारन की ठसक ठनी रहै ।
बगर-बगर बृषभान के नगर नित
भीषम-प्रभाव ऋतु ग्रीषम बनी रहै ॥

उद्धव शतक

रहति सदाई हरियाई हिय-घायनि मैं
ऊरध उसास सो झकोर पुरवा की है।
पीव-पीव गोपी पीर पूरित-पुकारति हैं
सोई रतनाकर पुकार पपिहा की है॥
लागी रहै नैननि सौं नीर की झरी औ
उठै चित मैं चमक सो चमक चपला की है।
बिनु घनस्याम धाम-धाम ब्रज मंडल मैं
ऊधौ नित बसति बहार बरसा की है॥

उद्धव शतक

जात घनस्याम के ललात दृग-कंज-पाँति
घेरी दिख-साध-भौंर-भीर की अनी रहैं।
कहै रत्नाकर बिरह बिधु बाम भयौ
चंद्रहास ताने घात घालत घनी रहैं॥
सीत-घाम-बरषा-बिचार बिनु आने ब्रज
पंचबान-बाननि की उमड़ ठनी रहैं।
काम बिधना सौं लहि फरद दवामी सदा
दरद दिवैया ऋतु सरद बनी रहैं॥

रीते परे सकल निषंग कुसुमायुध के
दूर दुरे कान्ह पै न तातैं चलै चारौ है ।
कहै रतनाकर बिहाइ बर मानस कौं
लीन्यौ है हुलास-हंस बास दूरिवारौ है ॥
पाला परै आस पै न भावत बतास बारि
जात कुम्हिलात हियौ कमल हमारौ है ।
षट ऋतु ह्वै है कहूँ अनत दिगंतनि मैं
इत तौ हिमंत कौ निरंतर पसारौ है ॥

काँपि काँपि उठत करेजौ कर चाँपि-चाँपि
उर ब्रजबासिनि कैँ ठिठुर ठनी रहै ।
कहै रतनाकर न जीवन सुहात रंच
पाला की पटास परी आसनि घनी रहै ॥
बारिनि मैँ बिसद बिकास ना प्रकास करै
अलिनि बिलास मैँ उदासता सनी रहै ।
माधव के आवन की आवतिँ न बातैँ नैँकु
नित-प्रति तातैँ ऋतु सिसिर बनी रहै ॥

१०१

उद्धव शतक

माने जब नैँकु ना मनाएँ मनमोहन के
तोपै मन-मोहिनि मनाए कहा मानौ तुम ।
कहै रतनाकर मलीन मकरी लौँ नित
आपुनौहीँ जाल अपनेहीँ पर तानौ तुम ।।
कबहूँ परे न नैन-नीर हूँ के फेर माहिँ
पैरिबौ सनेह-सिंधु माहिँ कहा ठानौ तुम ।
जानत न ब्रह्म हूँ प्रमानत अलच्छ ताहि
तोपै भला प्रेम कौं प्रतच्छ कहा जानौ तुम ।।

१०२

हाल कहा बूझत बिहाल परीं बाल सबै
बसि दिन द्वैक देखि दृगनि सिधाइयौ ।
रोग यह कठिन न ऊधौ कहिबे के जोग
सूधौ सौ सँदेस याहि तू न ठहराइयौ ॥
औसर मिलै और सर-ताज कछु पूछहिं तौ
कहियौ कछु न दसा देखी सो दिखाइयौ ।
आह के कराहि नैन नीर अवगाहि कछू
कहिबे कौं चाहि हिचकी लै रहि जाइयौ ॥

उद्धव शतक

नंद जसुदा औ गाय गोप गोपिका की कछु
बात बृषभान-भौन हूँ की जनि कीजियौ ।
कहै रतनाकर कहति सब हा हा खाइ
ह्याँ के परपंचनि सौं रंच न पसीजियौ ॥
आँस भरि ऐहै और उदास मुख ह्वै है हाय
ब्रज-दुख-त्रास की न तातैं साँस लीजियौ ।
नाम कौ बताइ औ जताइ गाम ऊधौ बस
स्याम सौं हमारी राम-राम कहि दीजियौ ॥

उद्धव शतक

ऊधौ यहै सूधौ सो सँदेस कहि दीजौ एक
जानति अनेक न बिबेक ब्रज-बारी हैं ।
कहै रतनाकर असीम रावरी तौ छमा
छमता कहाँ लौं अपराध की हमारी हैं ॥
दीजै और ताजन सबै जो मन भावै पर
कीजै न दरस-रस बंचित बिचारी हैं ।
भली हैं बुरी हैं औ सलज्ज निरलज्ज हू हैं
जो कहै सो हैं पै परिचारिका तिहारी हैं ॥

उद्धव
शतक

उद्धव के ब्रज से बिदा होते समय के कवित्त

उद्धव
शतक

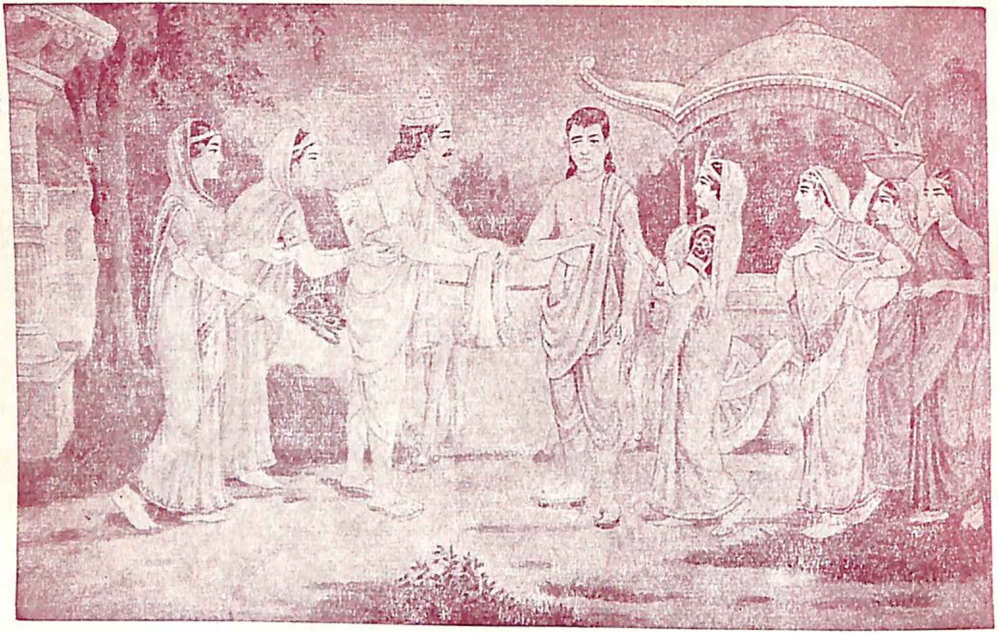

उद्धव शतक

धाइँ जित-तित तैं बिदाई-हेत ऊधव की
गोपी भरीं आरति सँम्हारति न साँसुरी ।
कहै रतनाकर मयूर-पच्छ कोऊ लिए
कोऊ गुंज-अंजली उमाहे प्रेम-आँसुरी ॥
भाव-भरी कोऊ लिए रुचिर सजाव दही
कोऊ मही मंजु दाबि दलकति पाँसुरी ।
पीत पट नंद जसुमति नवनीत नयौ
कीरति-कुमारी सुरबारी दई बाँसुरी ॥

उद्धव शतक

कोऊ जोरि हाथ कोऊ नाइ नम्रता सौं माथ
भाषन की लाख लालसा सौं नहि जात हैं ।
कहै रतनाकर चलत उठि ऊधव के
कातर ह्वै प्रेम सौं सकल महि जात हैं ॥
सबद न पावत सो भाव उमगावत जो
ताकि-ताकि आनन ठगे से ठहि जात हैं ।
रंचक हमारी सुनौ रंचक हमारी सुनौ
रंचक हमारी सुनौ कहि रहि जात हैं ॥

दाबि-दाबि छाती पाती-लिखन लगायो सबै
ब्यौंत लिखिबे कौ पै न कोऊ करि जात है।
कहै रतनाकर फुरति नाहिँ बात कछू
हाथ धर्‌यौ ही तल थहरि थरि जात है॥
ऊधौ के निहोरैं फेरि नैँकु धीर जोरैं पर
ऐसौ अंततापि कौ प्रताप भरि जात है।
सूखि जाति स्याही लेखिनी कैँ नैँकु डंक लागैँ
अंक लागैँ कागद बररि बरि जात है॥

उद्धव शतक

कोऊ चले काँपि संग कोऊ उर चाँपि चले
कोऊ चले कछुक अलापि हलबल से ।
कहै रतनाकर सुदेस तजि कोऊ चले
कोऊ चले कहत संदेस अबिरल से ॥
आँस चले काहू के सु काहू के उसाँस चले
काहू के हियै पै चंदहास चले हल से ।
ऊधव कौं चलत चलाचल चली यौं चल
अचल चले और अचले हू भए चल से ॥

उद्धव शतक

दीन्यौ प्रेम-नेम-गरुवाई-गुन ऊधव कौं
हिय सौं हमैव-हरुवाई बहिराइ कै।
कहै रतनाकर त्यौं कंचन बनाई काय
ज्ञान-अभिमान की तमाई बिनसाइ कै॥
बातनि की धौंक सौं धमाइ चहु कोदनि सौं
निज बिरहानल तपाइ पघिलाइ कै।
गोप की बधूटी प्रेम-बूटी के सहारे मारे-
चल-चित-पारे की भसम मुरकाइ कै॥

उद्धव
शतक

उद्धव के ब्रज से लौटते समय के कवित्त

उद्धव
शतक

उद्धव शतक

गोपी, ग्वाल, नंद, जसुदा सौं तौ बिदा ह्वै उठे
उठत न पाय पै उठावत डगत हैं ।
कहै रतनाकर सँभारि सारथी पै नीठि
दीठिनि बचाइ चल्यौ चोर ज्यौं भगत हैं ॥
कुंजनि की कूल की कलिंदी की रुऐं की दसा
देखि-देखि आँस औ उसाँस उमगत हैं ।
रथ तैं उतरि पथ पावन जहाँ हीं तहाँ
विकल बिसूरि धूरि लोटन लगत हैं ॥

उद्धव शतक

भूले जोग छेम प्रेम-नेमहि निहारि ऊधौ
सकुचि समाने उर-अंतर हरास लौं ।
कहै रतनाकर प्रभाव सब ऊने भए
सूने भए नैन बैन अरथ-उदास लौं ॥
माँगी बिदा माँगत ज्यौं मीच उर भींचि कोऊ
कोन्यौ मौन गौन निज हिय के हुलास लौं ।
बिथकित साँस-लौं चलत रुकि जात फेरि
आँस लौं गिरत पुनि उठत उसास लौं ॥

उद्धव के मथुरा लौट आने के समय के कवित्त

Imp
2 [illegible]

उद्धव शतक

गोपियों के आँसुओं से सिंचित
स्रोत आज अर्थात विरह को सहन कर
सकता है और गोपिका के धैर्य
विशांत और [illegible] हो गया है जो
आपरिचित [illegible] स्रोत उनके पास
था वह उद्धव [illegible] उस स्रोत रूपी
गोपिका को [illegible] कि शीघ्र
जोड़ जाता है। गोपियों की विरह रूपी
अग्नि को निरन्तर [illegible] रखती और
आज निरन्तर [illegible] रही थी। उद्धव की
चित्त रूपी पारा मन से परिवर्तित हो गया।३

उद्धव शतक

चल-चित-पारद की दंम-कंचुली कै दूरि
ब्रज-मग-धूरि प्र म-मूरि सभ-सीली लै।
कहै रतनाकर सु जोगनि बिधान भाँवि
अमित प्रमान ज्ञान-गंधक गुनीली लै॥
जारि घट-अंतर हौ आह-धूम धारि सबै
गोपी बिरहागिनि निरंतर जगीली लै।
आए लौटि ऊधव बिभूति भव्य भायनि की
कायनि की रुचिर रसायन रसीली लै॥

उद्धव शतक

आए लौटि लज्जित नवाए नैन ऊधौ अब
सब सुख-साधन कौ सूधौ सौ जतन लै।
कहै रतनाकर गवाँए गुन गौरव औ
गरब-गढ़ी कौ परिपूरन पतन लै॥
छाए नैन नीर पीर-कसक कमाए उर
दीनता अधीनता के भार सौँ नतन लै।
प्रेम-रस रुचिर बिराग-तूमड़ी मैँ पूरि
ज्ञान-गूदड़ी मैँ अनुराग सौ रतन लै॥

उद्धव शतक

आए दौरि पौरि लौं अवाई सुन ऊधव को
और ही बिलोकि दसा दृग भरि लेत हैं ।
कहै रतनाकर बिलोकि बिलखात उन्हैं
येऊ कर काँपत करेजैं धरि लेत हैं ॥
आवति कछूक पूछिबे औ कहिबे की मन
परत न साहस पै दोऊ दरि लेत हैं ।
आनन उदास साँस भरि उकसौंहैं करि
सौंहैं करि नैननि निचौंहैं करि लेत हैं ॥

उद्धव शतक

प्रेम-मद-छाके पग परत कहाँ के कहाँ,
थाके अंग नैननि सिथिलता सुहाई है।
कहै रतनाकर यौं आवत चकात ऊधौ
मानौ सुधियात कोऊ भावना भुलाई है॥
धारत धरा पै ना उदार अति आदर सौं
सारत बँहोलिनि जो आँस-अधिकाई है।
एक कर राजै नवनीत जसुदा को दियौ
एक कर बंसी बर राधिका-पठाई है॥

उद्धव शतक

ब्रज-रजरंजित सरीर सुभ ऊधव कौ
धाइ बलबीर ह्वै अधीर लपटाए लेत ।
कहै रतनाकर सु प्रेम-मद-माते हरि
थरकति बाँह थामि थहरि थिराए लेत ।।
कीरति-कुमारी के दरस-रस सद्य ही की
छलकनि चाहि पलकनि पुलकाए लेत ।
परन न देत एक बूँद पुहुमी की कोंछि
पोंछि-पोंछि पट निज नैननि लगाए लेत ।।

उद्धव
शतक

उद्धव शतक

ब्रज से लौटने पर उद्धव-वचन श्री भगवान्-प्रति

उद्धव शतक

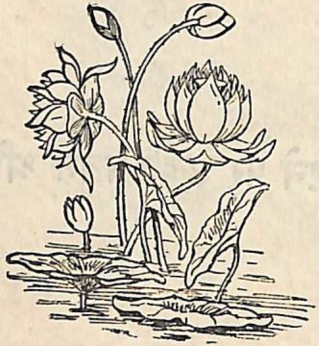

उद्धव शतक

आँसुनि की धार औ उभार कौं उसाँसनि के
तार हिचकिनि के तनक टरि लेन देहु ।
कहै रतनाकर फुरन देहु बात रंच
भावनि के बिषम प्रपंच सरि लेन देहु ॥
आतुर है और हू न कातर बनावौ नाथ
नैसुक निवारि पीर धीर धरि लेन देहु ।
कहत अबै हैं कहि आवत जहाँ लौं सबै
नैंकु थिर कढ़त करेजौ करि लेन देहु ॥

उद्धव शतक

रावरे पठाए जोग देन कौं सिधाए हुते
ज्ञान गुन गौरव के अति उदगार मैं ।
कहै रतनाकर पै चातुरी हमारी सबै
कित धौं हिरानी दसा दारुन अपार मैं ॥
उड़ि उधिरानी किधौं ऊरध उसासनि मैं
बहि धौं बिलानी कहूँ आँसुनि की धार मैं ।
चूर ह्वै गई धौं भूरि दुख के दरेरनि मैं
छार ह्वै गई धौं बिरहानल की झार मैं ॥

उद्धव शतक

सीत-घाम-भेद खेद-सहित लखाने सबै
भूले भाव भेदता-निषेधन बिधान के ।
कहै रतनाकर न ताप ब्रजबालनि के
काली-मुख-ज्वालना दवानल समान के ॥
पटकि पराने ज्ञान-गठरी तहाँ हीं हम
थमत बन्यौ ना प्रास पहुँचि सिवान के ।
छाले परे पगनि अधर पर जाले परे
कठिन कसाले परे लाले परे प्रान के ॥

ज्वालामुखी गिरि तैं गिरत द्रवे द्रव्य कैधौं
बारिद पियौ है बारि बिषके सिवाने मैं ।
कहै रतनाकर कै काली दाँव लेन-काज
फेन फुफकारै उहिं गावँ दुख-साने मैं ॥
जीवन बियोगिनि कौ मेघ अंचयौ सौ किधौं
उपच्यौ पच्यौ न उर ताप अधिकाने मैं ।
हरि-हरि जासौं बरि-बरि सब बारी उठैं
जानैं कौन बारि बरसत बरसाने मैं ॥

लैके पन सूछम अमोल जो पठायौ आप
ताकौ मोल तनक तुल्यौ न तहाँ साँठी तैं ।
कहै रतनाकर पुकारे ठौर-ठौर पर
पौरि वृषभानु की हिरान्यौ मति नाठी तैं ॥
लीजै हेरि आपुहीं न हेरि हम पासौं फेरि
याही फेर माहि भए माठी दधि-आँठी तैं ।
ल्याए धूरि पूरि अंग अंगनि तहाँ की जहाँ
ज्ञान गयौ सहित गुमान गिरि गाँठी तैं ॥

उद्धव शतक

ज्यौंही कछु कहन संदेस लग्यौ त्यौंही लख्यौ
प्रेम-पूर उमँगि गरे लौं चढ़्यौ आवै है।
कहै रतनाकर न पाँव टिकि पावैं नैंकुँ।
ऐसो दृग-द्वारनि स-बेग कढ़्यौ आवै है ॥
मधुपुरि राखन कौ बेगि कछु ब्यौंत गढ़ौ
धाइ चढ़ौ बट कै न जौपै गढ़्यौ आवै है।
आयौ भज्यौ भूपति भगीरथ लौं हौं तौ नाथ
साथ लग्यौ सोई पुन्य-पाथ बढ़्यौ आवै है ॥

उद्धव शतक

जैहै ब्यथा विषम बिलाइ तुम्है देखत हीँ
तातैँ कही मेरी कहूँ झूठि ठहरावौ ना ।
कहै रतनाकर न याही भय भाषैँ भूरि
याही कहै जावौ बस बिलँब लगावौ ना ।।
एतौ और करत निबेदन स बेदन हैँ
ताकौ कछु बिलग उदार उर ल्यावौ ना ।
तब हम जानैँ तुम धीरज-धुरीन जब
एक बार ऊधौ बनि जाइ पुनि जावौ ना ।।

१३५.

उद्धव शतक

छावते कुटीर कहूँ रम्य जमुना कैं तीर
गौन रौन-रेती सौं कदापि करते नहीं ।
कहै रतनाकर बिहाइ प्रेम-गाथा गूढ़
स्रौन रसना मैं रस और भरते नहीं ॥
गोपी ग्वाल बालनि के उमड़त आँसू देखि
लेखि प्रलयागम हूँ नैंकु डरते नहीं ।
होतो चित चाव जौ न रावरे चितावन को
तजि ब्रज-गाँव इतै पाँव धरते नहीं ।

उद्धव शतक

भाठी के बियोग जोग-जटिल-लुकाठी लाइ
लाग सौं सुहाग के अदाग पिघलाए हैं ।
कहै रतनाकर सुबृत्त प्रेम-साँचे माहि
काँचे नेम संजम निबृत्त कै ढराए हैं ॥
अब परि बीच खीचि बिरह-मरीचि-बिंब
देत लव लाग की गुबिंद-उर लाए हैं ।
गोपी - ताप - तरुन - तरनि-किरनावलि के
ऊधव नितांत कांत-मनि बनि आए हैं ।

इति श्रीउद्धव शतक

नियम और व्रत पुष्टि मार्ग के विरोधी हैं। क्योंकि प्रेम में
विस्तार चाहिये [illegible] करके उस सुदृढ़ प्रेमरूपी
साँचे में ढाला गया। नियम व्रत संयम से निवृत
[illegible]

अकारादि शब्दार्थ सूची

अ, आ

अध-ऊरध=ऊपर नीचे
अभाय=वैकल्य
अवाय=अवाक्, स्तब्ध
अकह=अकथ
अगवानी=आगे आकर मिलना
अरुझानी=उलझ गई
आँसू=आँसू
अनारी=योगी, स्त्रीहीन, वियोगी, मूर्ख
अन्यारी=पार्थक्य-हीन
अनुमानै=अनुमान करना
अनंग=अंगहीन, ब्रह्म, मदन
अवरोहैं=रोकेंगी, अवरोहण करना
अपर=दूसरा
आस=दिशा, आशा
अलिनि=भौंरों, सहेलियों, सखियों
अलच्छ=अलक्ष्य, अदृष्ट
अवगाहि=भरकर
आपुनपौ=अपना-पराया, अपनापन, अस्तित्व
अखारे=रंगभूमि
अनकही=न कहने योग्य
अनेसौ=अंदेशा, संदेह
अक्रूर=अ=नहीं+क्रूर=कठोर जो कठोर न हो—कंस के दूत का नाम।
अच्छनि=अक्षि या आँखें
आधे कान तनिक भी
आँठी=दही के थक्के
अलच्छ=लक्ष्यहीन, अदृष्ट, न देखते हुए
आंट=अटकाना, लगाना
अवर=अधिक होकर और बढ़ना
अछेह=बुरा, अनिष्ट

उ, ऊ

उठानि=प्रारम्भ
उबरि=उबलकर
उमहि=उमड़कर, उठकर, उमँगकर
उरात=समाप्त होना
उधरान्यो=चला गया
उझकि=उचककर
उसीर=खस
उदबासैं=उठावैं, रुठावैं, निर्वासित, उद्वासित करना
उतंग=ऊँचा
उघारि=खोलकर
उमहन=उऋण, उवरना या ऋण-मुक्त होना
उबारता=उधरना, मुक्त होना
उगहन=उगहना, वसूल करना

ऊबर=उठना, मुक्त होना
ऊरध=ऊपर, ऊर्ध्व स्वाँस, यह बुरी स्वाँस है

ऊने=न्यून, कम
उदास=रहित
उकसौहैं=उत्सुक हो, ऊपर की ओर
उदगार=उद्गार
उधिरानी=बिखर गई
उसि=बसकर, रहकर
उपच्यो=उबलकर बाहर आना
उधिरानी=खो जाना, नष्ट होना

ए, ऐ

एतिऐ=इतना ही
एतो=इतना

ओ, औ, अ

ओप=कांति
ओक=घर, स्थान
अँवाँ=आँवाँ, मिट्टी के बरतन जहाँ पकते हैं

क

काज=वास्ते
कनूका=कण
कढ़्यो=निकला ही
काक चंचवत=कौवे की चोंच-सी
कमेरी=दासी
कँखियाँ=काँखें, पार्श्व, छाती
कूल=किनारा
कलांच=अंशभूत
किरचैं=टुकड़े, पलकें
कै=करके
कीरति-कुमारी=राधिका
कुसुमायुध=मदन, पुष्प के आयुध-वाला
कोदनि=तरफ, ओर, दिशा
कंचली=केंचुल, ऊपर का मैल
करेजैं=कलेजे पर
कोंछि=कुक्षि, ऊपर
कसाले=कष्ट, विपत्ति
कूब=कूबर

ख

खचिहैं=खिच जाना, अंकित होना
खटिहै=चलेगी, लगेगी

ग

गहवरि=भरकर भारी होना
गोपि=छिपाकर
गोपद (भव)=गाय के पद-चिह्न-सा संसार
गिल=निगलना
गोइ=छिपा रखना
गुनवारी=गुणमयी, डोरीदार
गरु=भारी
गुनीली=गुणवाली
गँवाये=खोये

गढ़ी = छोटे गढ़वाला प्रासाद
गारै = गिराता है, छोड़ता है, मिलता है

घ

घनस्याम = काला बादल, श्रीकृष्ण
घात = आघात, चोट, मौका
घालक = करना, फेंकना
घाय = गात, चोट

च

चुचाइ = चूना, छलकना
चापि = दबाना
चोप = चाव, उल्लास
चाय = चाव
चख = आँखें
चबाव = उपहास, चर्चा
चमक = बिजली की चमक, रह रह कर उठनेवाली चमक या पीड़ा
चन्द्रहास = चाँदनी, तलवार
चलन न चारो = वश न चलना
चल = चञ्चल
चकात = चकित होते हुए

छ

छरकि = बिखरकर
छयो = छा गया
छबै = छाने लगीं
छोहि = क्षुब्द होकर
छातें = छतें
छार = धूल
छिगनी = कनिष्ठिका अँगुली
छतीसे = चालाक (धूर्त, नाई)
छठें-अठैं = छः-आठ योग, ज्योतिष में विरोध या वियोग-मूलक-बुरा योग है, अस्तु, यह निरोध भाव-सूचक है
छाके = छके हुए

ज

जोइ = देखकर, रहकर
ज्वै = देख रहीं
जुगती = युक्ति
जुगावौ = संचित करो
जोग = संयोग, योग, मिलाप
जोहि = देखकर
जकौ = बकते हो
ज्याइबे = उत्पन्न होना
जुहारि = भेंटना, आराधना
जमातैं = समूह
जऊ = यद्यपि
जोग = क्षमता, शक्ति
जीहा = जिह्वा
जीवन = पानी, जीवन
जारयो अंग = मदन, सूर्य
जगीली = जलनेवाली

झ

झार = झाड़ी
झौरि = झण्ड
झार = लपट, अग्नि से तप्त वायु का झोंका

ट

टसकत = हटना, खिसकना
टिकि = ठहर

ठ

ठाकुर = स्वामी
ठायो = स्थिर है
ठाहि = ठानकर
ठिठुर = ठंडक, शीतकृत संकोच
ठहि = स्थिर हो जाना

ड

डगि = डगमगाकर
डंक = नोक, डंक (जैसे बिच्छू आदि का) जो विषैला और उष्णता-कारक है
डगत = हिलते, कँपते

ढ

ढाइ = गिराकर
ढार = ढालने का साँचा, झुकाव
ढारे = ढलेहो
ढरारै है = ढलकता है

त

तूरि = तुरही
तूल = तुल्य
तूबरी = तुम्बी, (कूबड़-रूपी) जो तैरने में भी काम आती है
तपेला = गरम करने का पात्र
तीन-तेरह / **तीन-पाँच** = बिलग होना, दूर होना
तरुनि = वृक्ष, तरुनियों
तापत = तपन
तमाई = तमोगुण-कृत, अन्धकार, ताँबापन
तार = सिलसिला

थ

थहिबो = थाह लेना
थामि = पकड़कर
थानहि = स्थान ही में
थिरानी = स्थिर हो गई
थिर = स्थिर
थाती = न्यास, धरोहर
थापन = स्थापित करने को
थाके = थके हुए
थिराये = स्थिर किये

द

दीस्यो = दिखाई पड़ा
दुवार = द्वार, दरवाजा
दरिबो = मलना
दरिब = नाश करना

दौनौ = द्रोणाचल
दिख-साध=देखने की इच्छा
दवागी=दावाग्नि, वन की आग
दीठि=दृष्टि
दंभ=छल, कपट
दरि = दमन करना, दबाना
दरेरनि = रगड़, रेल-पेल
द्रवे=पिघले हुए
दुरे = छिपे, दूर हो गये
दाट = सहायक लकड़ी

ध

धरक = भय
धौंक = धौंकना

न

निफल = निष्फल
निवारि = दूर या अलग करके
निवेरी = निवृत्त
निरबैहैं = निबाहेंगी
निरबारन=सुलझाने, खोलने
नखियाँ = नख, नाखून
नाय = नौका
नारिन = स्त्रियाँ, नाड़ी
निहोरि = निहोरा करना, एहसान करना
निषंग = तरकस
नहि = बँधना, नथना
नीठि = किसी प्रकार, बलात्
नतन = झुकना, अवनति, नम्रता
निचौहैं = नीचे
नाठी=बलात्
निराटी = निराला, नवीन

प

पचि=श्रम करके
पाल = जहाज का पाल
पुचारे = चुमकार
पौरि = द्वार, दरवाजा
पोई = पोही, पिरोई
पारिहैं= फेरेंगे, रक्खेंगे
पाकसासन = इन्द्र
पासनि = ओर, दिशा
पँवारि = फेरकर
परतच्छ = प्रत्यक्ष
पतेक = प्रत्येक
पारी = डालकर
पराने = भाग गये
प्रकार = उपाय, रीति
पाती=पत्र, चिट्ठी, पत्ती
पीहा=हा ! प्रिय, प्रिय ! हा !
पुरती=पूरी, होती, मिलतीं
पतझार = पतझड़, लजा जाना
पतिछीन = पत्तों के बिना, लज्जा-रहित
पैरिबो = तैरना

प्रतच्छ=प्रत्यक्ष या स्पष्ट व्यावहारिक साकार रूप
परिचारिका=दासी
पुहमी=पृथ्वी
पुन्यपात=पवित्र पानी
पारि=छोड़ या डालकर
पाकी=परिपक्व, प्रौढ़
पारैं=डालता है

फ

फनिद=शेषनाग
फलकनि=पहल, टुकड़े
फुरत=निकलना, प्रस्फुटित होना, स्फुरण होना
फाटी है=फट पड़ना

ब

बहिराइ=बाहर करके, दूर करके
बहोलिनि=कुर्त्ते की बाहों से
ब्यौंतगढ़ौ=उपाय करो
बिलग=बुरा मानना, दूसरा समझना
बटमार=रास्ते के लुटेरे, डाकू
बागार है=फैलाता है
बिथके=थकित हुए
वारन=मना करना
बात=हवा, बातचीत
बिरमानी=विरम गई
बयारि=हवा
बूड़ै=डूबै
बानक=बनावा
बराइहै=हटावेगा
बयात=बकना
बाद=व्यर्थ त्याज्य, कथन
बिसास=विश्वास
बवंडर=चक्करदार हवा का झोंका
बसीठ=दूत
बंचक=ठग
ब्रह्मद्रव=गंगाजल, श्रीकृष्ण, शोभरस
बौरे=बौरयुक्त, प्रमत्त
बैहरि=हवा
बारिनि=बाला स्त्रियों, बागीचों
बातें=हवायें, संदेशे, सदाचार
बररि=ऐंठ या मुड़कर

भ

भिचि=घिर आई
भरमाये=भ्रम में भुलाये हुए
भ्वै=भीग रही
भौंर=भँवर, भ्रमर
भोरे=भोले-भाले
भरिबो=मरना, करना
भीति=डर, दीवार
भडंग=भाँड़पन
भुजंगनि=काला सर्प, कहते हैं कि सर्प आँखों से सुनता है, अतः चक्षुश्रवा कहाता है।

भुरकाइ = छिपकर
भायन = भाव
भाती = भट्ठी

म

मतंग = हाथी
मताये = प्रमत्त
मनुहार = मन के अनुसार करना, मनाना
मिसाल = समानता, उपमा
मै = मय, युक्त
मिदुराने = मीलनोन्मीलन
मारतंड = सूर्य
मानस = मन, मानस सरोवर
म्व = सान रहीं
मीढ़ि = मलकर
मरीचैं = किरणों
मीच = मृत्यु
मढ़त = गले लगना
मधुपुरियान = मधुपुरवासी
मखियाँ = मक्खियाँ
मुहचंग = एक बाजा
मुकुर = शीशा
मूर=मूलधन, जड़
मीन मेख = "मीने मेषे वसन्तम्" वसन्तऋतु मीन और मेष में सूर्य के आने पर होती है, सोच-विचार क्या है--
माधव = कृष्ण, वसन्त
मारे = मृत किये, दमन किये
माते = मस्त, प्रमत्त

र

रस्योइ=रसना, बूँद-बूँद गिरना
रतनाकर=समुद्र, कवि का उपनाम
राँचे=रंजित
रस=रसायन (ओषधि), मन के रस, प्रेम
रीते=खाली
रुऐंदी=रोदनमयी
रावरे=आपके
रेती=रेतीली जगह

ल

लगाव=सम्बन्धी
लंकनि=कमर
लेखते=लिखते (पृथ्वी पर लिखना मुहावरा है)
लगार=रस्सी, लगाव करानेवाली चीज
ल्याइ=आग
लोपक=लोपकारी
लच्छ=लक्ष्य, उद्देश्य
लौन=नमक

व

वियोग=विछोह, योग-रहित बिलगता
वे=अक्रूर के स्थान पर आया है।

बेऊ=वे भी

श

शृंगनि=चोटियों

स

सुबात=सुन्दर वार्ता, हवा

सकस्योई=सकसना, अटकना

सियाने=सीमा पर

सिहाने=ललचाये

सके=शंकित

सेद=पसीना

सनेस=संदेश

सिरैहैं=ठंडी करेंगी

सासन=शासन

सारन=बुझाने

समीहा=सम्=सब प्रकार+ईहा=इच्छा

सरताज=कृष्ण

सुरवारी=सुस्वर-यु

सुधियात=स्मरण करते

सारत=पोंछते

सद्यहि=बारंबार, तत्काल

ससासिंग=खरगोश के सींग, असम्भव बात

साँसति=कष्ट, विपत्ति

सीरो=ठंढा

सत्ताध=इच्छापूर्वक

सिवान=सीमा, पास

सांठी= सारहीन पदार्थ

सुदर्शन=एक ज्वर-नाशक चूर्ण, सुन्दर दर्शन

सिराई=भलाई, ठंडा करना, समाप्त

स्रौन=कान

साँच=संचित करके

ह

हौंस=इच्छा

हुमसावतीं=उठाना

हीतल=हृदयतल

हौले=धीमे, घबड़ाये

हिलि=कँपना

हीरा अरु काँच=दोनों परस्पर विरोधी हैं, काँच को हीरा काट देता है। अस्तु दोनों साथ नहीं रह सकते

हुती=थीं (हुते=थे)

हरयाई=हरापन, ताजगी

हलबल=शीघ्रतावश ऊटपटाँग बकना

हमेव=अहम्=मैं+एक ही, मैं ही सब कुछ हूँ

हरुवाई=हलकापन

हरास=ह्रास

सम्पादक—रामचन्द्र शुक्ल, सरस'
साहित्य-मंत्री रसिक-मंडल, प्रयाग।

बूढ़ा बिलंद बुंद मि बस बिचारी की

13/27

लेहू होँ गनति क गलेवन। हन-चनी की

L. P. PRIVATE (PUB) LTD